अध्यात्म (धर्म)

विषय सूची

परिशिष्ट

भूमिका

देश के बड़े बड़े शिक्षाविशेषज्ञ इस बात से चिन्तित हैं कि देश के विद्यार्थी समुदाय का चरित्र निर्बल होता जा रहा है, उनके नैतिक बंधन ढीले पड़ते जा रहे हैं, वे अपने धर्म से प्रायः अनभिज्ञ रहते हैं। और बाल्यावस्था में ही जो सदाचार की नींव जमनी चाहिये थी वह उनमें नहीं जमती। उनमें उस दृढ़ता और चरित्र गठन का अभाव हो रहा है, जिसकी ससार के सग्राम में सफलता प्राप्त करने के लिये अत्यन्त आवश्यकता है।

कोई शिक्षा प्रणाली उस समय तक सन्तोष जनक नहीं हो सकती जब तक उसमें इस उद्देश्य की पूर्ति करने को धार्मिक शिक्षा की भी व्यवस्था न हो। धर्म और सदाचार ही मनुष्य को पशुओं मे भिन्न बताने वाले गुण हैं। यदि मनुष्य की अद्भुत मानसिक शक्ति पर धर्म और नीति के अकुश न हों तो वह ससार के लिये हितकारक होने के बदले मनुष्य समाज के महान कष्ट का कारण हो सकती है। अनीत करने वाला मनुष्य पशुओं से भी अधिक क्रूर व डरावना हो जाता है। धार्मिक विकास के विना मनुष्य का व्यक्तित्व अधूरा रह जाता है। जिस प्रकार शारीरिक निर्बलता से मनुष्य अनेक रोगों का शिकार हो जाता है, उसी प्रकार चरित्र की निर्बलता से अनेक मानसिक व सामाजिक दोष पैदा हो जाते हैं। और भारतीय शिक्षा प्रणाली में धार्मिक शिक्षा का अत्यन्त अभाव है।

जहाँ धार्मिक शिक्षा का इतना अभाव है वहाँ नैतिक बन्धनों को शिथिल करने वाले अनेक कारण उपस्थित हो गये हैं। नैतिक स्वतन्त्रता ही आज कल सभ्यता का चिन्ह बन गई है। नैतिक बधनों अथवा सदाचार के पूर्ण पालन की बात चीत करना दकियानूसी होना समझा जाता है। अथवा उसे पडित व मुल्ला कह कर तिरस्कार किया जाता है। नैतिक महानता के बदले ऊपर की टीप टाप, गप्पें हाकने का अभ्यास नैतिक बधनों से मुक्ति यही आधुनिक सभ्यता की मुहर होगई हैं। इससे व्यक्ति व समाज दोनो के लिये बड़ा घोर परिणाम हो रहा है। नैतिक बल से रहित मनुष्य का मन व शरीर दोनों ही निर्बल हो जाते हैं, और यह निर्बलता दिनों दिन और पीढ़ी दर पीढी बढती जाती है। सम्भव है कि कोई कोई प्रतिभावान मनुष्य सदाचार रहित होते हुए भी शक्तिशाली हो जाँय। परन्तु यदि वे सदाचारी भी होते तो उनका तेज और भी अधिक होता। नैतिक बल के बिना मनुष्य में सहन शक्ति कठिनाइयों को पार करने का बल और अथक परिश्रम करने का स्वभाव पैदा नहीं होता। ऐसे मनुष्य पर कठिन समय में भरोसा नहीं किया जा सकता। उस पर कोई गुरुतर भार नहीं दिया जा सकता। ऐसे मनुष्य कोल्हू के बैल हो सकते हैं, परन्तु सग्राम के योद्धा नहीं हो सकते। और यदि ऐसे नीति रहित मनुष्यों मे साम्प्रदायिक शिक्षा द्वारा दृढ धर्मी भी पैदा हो जाय तब तो वे ससार के लिये एक भय का कारण हो जाते हैं। उनमे बलवानों के सम्मुख गिड़गिड़ाने और निर्बलों पर अत्याचार करने का स्वभाव पैदा हो जाता है, क्योंकि समूह से ही महान बनना है। ऐसे व्यक्तियों के समाज मे अनेक रोग, झगड़े उद्दडता

अव्यवस्था, बढ जाते हैं। समाज की स्थिरता नष्ट हो जाती है, नित्य-प्रति नये नये सिद्धान्त निकलते हैं। धर्म और नीति के बंधन शिथिल हो जाते हैं। स्वार्थ और धोंगा धागी बढ जाती है। सदाचार उपहास का विषय हो जाता है। भलमनसाहत और सत्यता मूर्खता समझी जाती हैं। शांति प्रियता निर्बलता समझी जाती है। परस्पर सहयोग के स्थान पर क्षुद्रता और साम्प्रदायिक पक्षपात बढ जाते हैं। साम्प्रदायिक दंगे फिसादों का तांता लग जाता है, भले मनुष्यों के जीवन संकट में पड जाते हैं, और सारा समाज पतन की ओर अग्रसर होता है।

यही अवस्था आज हमारे देश की है। एक ओर तो सदाचार की खिल्ली उडाना और बंधनों से मुक्त उश्रृंखल व स्वतंत्र जीवन ही सभ्यता समझी जाती है। दूसरी ओर कट्टर धर्मावलम्बी धर्म के भाव व उद्देश्य को बिना समझे ही अपने धर्म के एक एक अक्षर पर अकडते हैं। धार्मिक सहिष्णुता और विवेक तो इस आंधी तूफान में कोसों दूर उड़ गये हैं। और समाज धार्मिक, राजनैतिक व आर्थिक लडाई झगड़ों से छलनी होकर टूट फूट कर ढेर हो गया है। समाज के भिन्न भिन्न भाग धर्म के नाम पर लड मर रहे हैं और देश के इतिहास के पन्ने साम्प्रदायिक दंगे फिसादों से काले होते जा रहे हैं। लोग अपने धर्म के सच्चे आदेशों को भी भूल गये हैं। जब अपने धर्मों को ही वे नहीं जानते फिर अपने साथी दूसरे धर्म वालों के धर्मों की सुन्दरता को पहचानना तो उनके लिये असम्भव ही है। अतएव उनमें धार्मिक सहानुभूति पैदा होने की आशा स्वप्न में भी नहीं की जा सकती शिक्षा प्रणाली में सच्ची धार्मिक शिक्षा के अभाव के यह स्वाभाविक परिणाम हैं।

सदाचार की आवश्यकता से तो बहुत लोग सहमत होंगे। परन्तु सदाचार के लिये धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता कदाचित् सब न स्वीकार करते हों, परन्तु बिना किसी अनुशासन के कोई नैतिक सिद्धान्त स्थिर नहीं रह सकता। ऐसे लोग जो सदाचार का पालन केवल उसको श्रेष्ठ समझ कर करते हैं बहुत थोड़े होते हैं। साधारण मनुष्यों को तो किसी ऐसे अनुशासन की आवश्यकता रहती है, जिससे उन्हें सहज ही में मालूम हो जाय कि अमुक प्रकार के कार्य करने से उनको अमुक हानि होगी। सदाचार के लिये धर्म से अधिक बलवान अनुशासन जन समाज के लिये आज तक ज्ञात नहीं हुआ। जनता के विचार बदलते रहते हैं, इसलिये केवल जनमत पर अवलम्बित कोई सदाचार के सिद्धान्त स्थिर नहीं रह सकते। उदाहरण के लिये देखिये डाकुओं के समाज की नीति किसी धार्मिक संस्था की नीति से सर्वथा भिन्न होती है। फिर यह भी स्मरण रखना चाहिये कि किसी भी जन समाज का जनमत भी किसी न किसी विशेष धर्म के अनुसार रहा करता है। उस धर्म को यदि निकाल दिया जाय तो उस समाज का आधार नष्ट हो जायगा। ऐसा जनमत पहले से भी अधिक परिवर्तनशील व क्षणिक हो जायगा। यही कारण है कि संसार में नास्तिकवाद अनेक प्रकट हुए और नष्ट हो गये। उन्होंने सदाचार की नींव धर्म से भिन्न किसी सिद्धान्त पर खड़ी करनी चाही परन्तु वह उसे स्थिर न रख सके। समाज के लिये वे अन्त में अनुपयोगी व भयानक सिद्ध हुए।

दूसरी ओर धर्म समाज में सदैव एक प्रबल शक्ति रहा है। बिना धार्मिक आधार के सदाचार शिक्षा निरस और निर्बल रहती है। बिना

धार्मिक अनुशासन के नैतिक सिद्धान्त केवल बुद्धि विलास के विषय रहते हैं, परन्तु धर्म से उनमें एक शक्ति का सचार हो जाता है। धर्म का अध्ययन मनुष्य के मन को आकर्षित करके स्वाभाविक रूप से उसमें सदाचार प्रेम प्रवेश कर देता है। धर्म का ज्ञान मनुष्य मे नैतिक वल पैदा करता है, और नैतिक आचरण को रुचिकर भी बना देता है। जहाँ शुद्ध सदाचार के सिद्धान्त केवल बुद्धिमान मनुष्यो को ही प्रभावित कर सकते हैं, वहाँ धर्म का प्रभाव सब प्रकार के लोगों पर पड़ता है। जो क्रूर और उद्दड होते हैं, उनको धर्म डराता है। जो बुद्धिमान होते हैं, उनको तत्वज्ञान देकर सन्तुष्ट करता है। जो भावुक होते हैं, उनको भक्ति का आनन्द प्राप्त करता है। जो भले स्वभाव के हैं, उन्हें सदाचार की आवश्यकता प्राकृतिक कारणों द्वारा बताता है। और साधारण जन समाज को सदाचार का रास्ता दिखाता है। जब कोई व्यक्ति धर्म का तिरस्कार करता है, और अपने वल के घमड में समाज व धर्म को परवाह नहीं करता वरन् अपनी इच्छा पूर्ति को ही धर्म समझता है तभी वह दूसरों के कष्ट का कारण हो जाता है।

कदाचित् भारतवर्ष मे अनेक धर्मों के होने के कारण हमारी शिक्षा प्रणाली में धार्मिक शिक्षा सम्मिलित नहीं हो सकी। क्योकि यदि सब धर्मों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय तो उसका व्यय असहनीय होजाय और किसी विशेष धर्म की शिक्षा से दूसरे धर्मों को आपत्ति करने का कारण मिलेगा। अतएव भारतीय सरकार ने धार्मिक उदासीनता की नीति ग्रहण की और देशी राज्यों ने उसी नीति की नकल की। परिणाम यह हुआ कि देश भर की पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा का अभाव

हो गया। इस आवश्यकता की पूर्ति का भार परिवार के वातावरण पर या साम्प्रदायिक सस्थाओं व स्कूलों पर छोड दिया गया है। इन साम्प्रदायिक स्कूलों या सस्थाओं ने और भी ग़ज़ब ढाया। इनके पहले तो सब लोगों के साथ साथ जीवन व्यतीत करने के कारण लोगों में परस्पर सहानुभूति भी पैदा होने लगी थी। परन्तु इन साम्प्रदायिक सस्थाओं ने अपने धर्म को परमोच्च ईश्वर वाक्य और दूसरे धर्मों को अपूर्ण समझना ही सिखाया। इन साम्प्रदायिक सस्थाओं ने अपने सदस्यों में और विद्यार्थियों मे साम्प्रदायिक भाव कूट कूट कर भर दिये और परिणाम जो होना था वही हुआ। देश मे धार्मिक सघर्ष और भी बढ गया। धर्म का अच्छा प्रभाव पडने के बदले साम्प्रदायिकता बढ गई। जो उपाय किया था वह उलटा पडा।

आज कल प्राय: घरों मे तो कुछ धार्मिक शिक्षा होती ही नहीं। जिन धार्मिक रस्म रिवाजों का पालन किया जाता है उनके कारणों का अथवा उनके नैतिक महत्व का कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं होता। परिवार के अन्य लोगों के विचारों और आचारों का प्रभाव अवश्य पडता है, परन्तु भिन्न भिन्न लोगों के अलग अलग विचार होने के कारण कोई एक सा नैतिक भाव जन समाज मे पैदा नहीं होता। आज जो बालक है वही भविष्य में एक परिवार का अध्यक्ष होता है। जब उस बालक को कोई नैतिक या धार्मिक शिक्षा नहीं मिली तो आगे उसका पारिवारिक जीवन भी कोई ऊंचे दरजे का नहीं हो सकता, और न उसके जीवन के आदर्श से उसके बच्चों को ऊची नैतिकता का पाठ मिल सकता है। इससे धर्म का शनै शनै अधिक अधिक पतन होगा। इसलिए धार्मिक

शिक्षा को केवल पारिवारिक जीवन पर छोड़ कर संतोष नहीं किया जा सकता।

इन बातों का इलाज धार्मिक शिक्षा को स्कूलों में पुनः प्रतिष्ठित करना है। यह धार्मिक शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि जो प्रत्येक विद्यार्थी को उसके अपने धर्म का सच्चा ज्ञान तो करावे ही जिससे उसका चरित्र पवित्र उज्वल व तेजस्वी हो, परन्तु दूसरे धर्मों के प्रति भी आदर का भाव उत्पन्न करे जिससे वह समझे कि दूसरे धर्म भी ऐसी ही शुद्ध व सच्चे हैं जैसे कि उसका अपना धर्म है। दूसरे धर्मों के प्रति ऐसे सहानुभूति पूर्ण व आदर मिश्रित भाव से उसका अपना चरित्र भी अधिक पवित्र व बलवान होगा, क्योंकि उसमें से द्वेष अभिमान और साम्प्रदायिकता के भाव निकाल कर उनके स्थान पर उदारता, प्रेम और सहिष्णुता के भावों का उदय होगा। वह केवल अपने धर्म को सच्चा और दूसरों को झूठा समझना छोड देगा और वह समझ जायगा कि विविध धर्म भिन्न देशों और परिस्थिति की भिन्नता के कारण पृथक पृथक स्वरूपों में प्रगट हुए, और उनके मूल मे समान प्रकार के सिद्धान्त उपस्थित हैं। फिर वह दूसरे धर्म वालों से झगडा करना छोड देगा। जिस प्रकार भिन्न भिन्न व्यवसाय करने वाले सम्बन्धी एक ही परिवार के सदस्य बन कर रह सकते हैं, उसी प्रकार अनेक धर्मों में विश्वास करने वाले भी परस्पर प्रेम व शान्ति का जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

यह शिक्षा स्कूलों में ही देनी चाहिए क्योंकि यही समय है जब कि विद्यार्थियों का चरित्र गठन होता है। इस समय जैसे प्रभाव उनके मन पर डाले जावे, वैसा ही उनका चरित्र बनेगा। यही उम्र प

पहुँचने पर तो उनके भाव व विचारों का सगठन हो चुकता है। उस समय नवीन विचारों का इतना गहरा प्रभाव नहीं पड़ता। स्कूल से निकल कर कालेज मे वह और गहरी फिलासफी या विशेष विषय का अध्ययन कर सकता है परन्तु आधारभूत धार्मिक शिक्षा स्कूलों मे ही मिलनी चाहिए। ऐसी धार्मिक शिक्षा मे देश की दोनों बडी समस्याए एक साथ सुलझ जायगी। देश की जनता मे नैतिक बल बढेगा और उसके आदर्श ऊँचे होंगे, क्योंकि यह विद्यार्थी ही भविष्य की भारतीय समाज बनावेगे। साथ ही साम्प्रदायिक कठिनाई का भी एक स्थायी हल निकल आवेगा और सब धर्मों के लोगो मे प्रेम व मेल बढेगा।

इस कार्य के लिये ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता है जिन मे भारतवर्ष मे रहनेवाले सब मुख्य मुख्य धर्मों का सहानुभूतिपूर्ण वर्णन हो। इससे विद्यार्थी अपने धर्म का ज्ञान तो प्राप्त करेगा ही वरन् दूसरे धर्मों की सुन्दरता को भी समझेगा। उसे यह भी ज्ञान होगा कि मूल सिद्धान्तों में सभी धर्म समान हैं। प्रत्येक धर्म का वर्णन पृथक पुस्तक मे नहीं होना चाहिये वरन् प्रत्येक क्लास के लिये नियत पुस्तक मे सभी धर्मों की ऐसी बातें आ जानी चाहिये जो उस क्लास के लिये उपयोगी हों। इस प्रकार विद्यार्थी सभी धर्मों से परिचय प्राप्त कर सकेगा।

ऐसी धार्मिक शिक्षा की ही योजना श्रीमत राजराजेश्वर होलकर नरेश की सरकार ने तैयार की है। इसका श्रेय विशेषकर श्रीयुत सर सिरेमल बापना साहब, के० टी०, सी० आई० ई० प्रधान सचिव होलकर सरकार को है जो इन दोनों समस्याओं को हल करने मे अनेक वर्षों

मे प्रयत्नशील हैं और इस योजना को फलीभूत करने में सफल हुए हैं। यह योजना समाज की सम्पूर्ण बुराइयों को दूर कर सके या न करे परन्तु इसमें कोई सदेह नहीं है कि इसका प्रभाव समाज के ऊपर केवल भला ही पड़ सकता है। इससे समाज के शरीर में शुद्ध रक्त का सचार हो कर उसकी अनेक व्याधियाँ शात होंगी। और जब इस शिक्षा से प्रभावित विद्यार्थी समाज के सदस्य होगे तो एक स्वस्थ भारतीय समाज ससार को अपने तेज से चकित कर देगा। सर सिरेमल वापना ने देश की इस कठिन समस्या का हल सुझाकर एक महान सेवा की है। जिसके लिये आनेवाली समाज सदैव उनकी कृतज्ञ रहेगी।

इस योजना के अनुसार छे पुस्तके तैयार की गई हैं। इनमे सात मुख्य धर्मों का (हिन्दू धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म, सिक्ख धर्म, पारसी धर्म, जैन धर्म और बुद्ध धर्म) हाल है। पहली दो पुस्तकें पाचवीं व छठी क्लास के लिये हैं। उनमें सब धर्मों के प्रवर्तकों आचार्यों व महान पुरुषों के जीवन चरित्र हैं। जब हमको उनके चरित्र में श्रद्धा होगी तो हम उनके कथन और उपदेश को भी आदर से पढेगे। इन पुस्तकों से जहाँ विद्यार्थी को सदाचार की शिक्षा मिलेगी, वहाँ साथ ही साथ दूसरे धर्म वालों के जीवन की विशेषता भी ज्ञात होगी। तीसरी पुस्तक सातवीं क्लास के लिये है। इसमे प्रत्येक धर्म के रीतिरिवाज, सस्कार साहित्य, तीर्थ, और उत्सव का वर्णन है। चौथी पुस्तक में जो आठवीं क्लास के लिये है प्रत्येक धर्म के मुख्य सिद्धान्तों का निरूपण है। पाचवीं पुस्तक मे धार्मिक भावों के विकास, प्रत्येक धर्म की विशेषता और सब धर्मों में समानता का वर्णन है। यह पुस्तक नवीं क्लास के

लिये है और दसवीं क्लास के लिये छठी पुस्तक में सदाचार और धर्म के मूल सिद्धान्त और विभिन्न धर्मों द्वारा प्रतिपादित तथा मनोविज्ञान व जीवविज्ञान द्वारा अनुमोदित उपायों द्वारा नैतिक महानता प्राप्त करने का विवेचन है।

आशा है कि इस पाठमाला से दोनों उद्देश्यों—अर्थात् देश के नवयुवकों में सदाचार और चरित्र बल के बढ़ने और साम्प्रदायिक विद्वेष के दूर होने की पूर्ति होगी जिस की हमारे देश की उन्नति के लिये अत्यन्त आवश्यकता है। यदि यह पाठमाला इनमें कुछ भी सफलता प्राप्त कर सकी तो इस योजना के प्रवर्तकों को परम सन्तोष होगा और लेखक अपने आपको महान सौभाग्यशाली समझेगा।

इस पाठमाला की तीसरी और चौथी पुस्तकों का सम्मिलित नाम धार्मिक विवरण' है। पाठकों की सुविधा के लिये इसे दो भागों में विभक्त कर दिया गया है। पहले भाग का नाम "धार्मिक रीति रिवाज" है और दूसरे का नाम "धार्मिक व्याख्या" है। इसी प्रकार पांचवीं व छठी पुस्तकों का सम्मिलित नाम 'धार्मिक सिद्धान्त" है। इस को भी दो भागों में बांट दिया गया है। पहले भाग अर्थात् पांचवी पुस्तक का नाम धार्मिक सिद्धान्त है और दूसरे भाग अथवा छठी पुस्तक का नाम "धार्मिक तत्व' है। इन पुस्तकों में जिन धर्मों का नाम लिखा गया है उन धर्मों के अंश उन्हीं धर्मों के आचार्य पुरुषों का लिखा लिये गये हैं। दूसरे धर्म के हाल को कितने भी [illegible] से और कैसी भी सहानुभूति से लिखा जाय फिर भी एक [illegible] के लिये उसमें कुछ भूल चूक रह जाना स्वाभाविक

ही है। इस दोष को दूर करने के लिये ही विविध धर्मों के अंशों को उनके आचार्यों को दिखाया गया और जो सुधार उन्होंने बताये थे सब कर दिये गये हैं। और उन आचार्यों के मत भी प्राप्त कर लिये गये हैं तथा वे यथास्थान छाप भी दिये गये हैं।

एक बड़ी कठिनाई ऐसे गूढ़ विषयों को साधारण शब्दों में वर्णन करने की थी कि जिस से वे साधारण विद्यार्थियों की समझ में सहज ही आजाय। यथाशक्ति साधारण शब्दो का प्रयोग करते हुए भी अनेक क्लिष्ट शब्द आगये हैं फिर भी उनका प्रयोग बहुत कम हुआ है।

अत्यन्त परिश्रम करने पर भी ऐसे गहन विषय के निरूपण में त्रुटियां रह जाना स्वाभाविक ही है, विशेष कर जब कि लेखक मुझ जैसा अल्प बुद्धि हो। परन्तु सहृदय पाठकों से यह आशा है कि वे उन त्रुटियों को लेखक को सुझाकर इन महान कार्य में सहायता प्रदान करेंगे।

श्री होलकर सरकार सम्पूर्ण धर्मप्रिय जनता की और विशेष कर लेखक की धन्यवाद की पात्र हैं जिस की उदारता से ही इस कार्य का सम्पादन सम्भव हुआ है।

इन पुस्तकों को लाभदायक और सुन्दर बनाने के लिये बहुमूल्य आदेश देने के कारण वज़ीर उद्दौला राय बहादुर श्रीमान सर एस० एम० बापना के०टी० सी० आई० ई० प्राइम मिनिस्टर इन्दौर का मैं अत्यन्त अनुगृहीत हूं। मैं उन सब विद्वानों का कृतज्ञ हूं जिन के

पुस्तकों से इन पुस्तकों के लिखने मे सहायता मिली है। उन की सूची लम्बी है उन की कृपा से ही मै इस कार्य को पूरा कर सका हूँ।

"अति अपार जे सरित वर। जो नृप सेतु कराहि।
चढि पिपीलिका परम लघु, बिनु श्रम पारहिं जाहि॥

जिन महानुभाव धर्माचार्यों ने निःस्वार्थ भाव से केवल धर्म के नाते इन पुस्तकों के विविध धर्मों के अंशों को पढने और सुधारने में अपने बहुमूल्य समय का दान किया है उन का मैं अत्यन्त आभारी हूँ। बिना उनकी सहायता के इन पुस्तकों की उद्देश्य पूर्ति प्रायः असम्भव ही होती। अतएव इनके शुद्ध स्वरूप में प्रकाशित होने का श्रेय विशेष कर उन्ही को है।

मैं श्रीयुत सैयद एच० एच० अजमी का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने कृपया तीसरी और चौथी पुस्तक के इस्लाम धर्म के अंश का उर्दू मे अनुवाद किया है। यह अनुवाद उपर्युक्त दोनों पुस्तकों में परिशिष्ट के रूप में लगा है कि जिससे हिन्दी न जानने वाले भाई भी इस्लाम धर्म से परिचय प्राप्त कर सकें।

इन पुस्तकों के प्रूफ देखने मे मेरी छोटी सुपुत्री चन्द्रावती सिहल ने जो सहायता की है उसका उल्लेख करना भी उचित प्रतीत होता है।

अब यह पुस्तक पाठकों के हाथ मे है। इसमें जो भूलें रह गई हों उन को पाठक अपनी उदारता से क्षमा करें और सब धर्मों के प्रति लेखक की श्रद्धाञ्जलि रूप इस तुच्छ भेंट को सप्रेम स्वीकार

करें। लेखक की भगवान् से यही प्रार्थना है कि वे इस पुस्तक के पढनेवालों में विश्व प्रेम और निर्मल भगवत भक्ति जागृत करें।

विनीत

ज्वाला प्रसाद सिंहल

सहायक पुस्तक सूची

१—आदि पुराण (जिनसेनाचार्य)। २—उत्तर पुराण (जिनसेनाचार्य) ३—जैन शिक्षा दिग्दर्शन (विजयधर्म सूरि)। ४—श्रावक धर्म संग्रह (दरयावसिंह सोंधिया)। ५—रत्नकरण्डक श्रावकाचार्य (समतभद्र स्वामी)। ६—भागवत पुराण। ७—धर्म शिक्षा (लक्ष्मीधर वाजपेयी) ८—प्राचीन भारत वर्ष की सभ्यता का इतिहास (रमेश चन्द्र दत्त)। ६—धर्म विज्ञान (स्वामी दयानन्द—भारत धर्म महामण्डल) १०—धर्मकल्पद्रुम। ११—एकश्लोकी गीता। १२—गीता रहस्य (बाल गंगाधर तिलक)। १३—संस्कार विधि (स्वामी दयानन्द सरस्वती)। १४—भारतवर्ष का इतिहास (रामदेव)। १५—धार्मिक इतिहास (चन्द्र शेखर पाठक)। १६—अक्षरावली (कबीर साहब)। १७—हिन्दू त्योहार व तीर्थ। १८—बौद्ध कालीन भारत (जनार्दन भट्ट)। १९—धर्म इतिहास रहस्य (रामचन्द्र शर्मा)। २०—बुद्ध चर्या (राहुल सांकृत्यायन) २१—प्रभु यीशु मसीह की शिक्षाएं (सोना मसीह)

۲۲ دبستان مذاہب — ۲۳ — مذاہب السلام مصنفہ محمد نجم الغنی خان — ۲۴ — تاریخ الامت مصنفہ مولانا اسلم — ۲۵ — [illegible] مصنفہ شیو نراین لعل —

26. Dravya Sangrah (S C. Ghoshal). 27 The Heart of Jainism (Mrs S Stevenson) 28 Budhism (Rhys Davids) 29 Early History of the Spread of Budhism (N Dutt) 30 Manual of Budhism (H. Karnik) 31. Outlines of Mahayani Budhism (Sujuki) 32. Hinduism and Budhism (Sir Charles Chitt) 33 The Essence of Budhism (P L. Narasu) 34 Panch Shila (Bhikku Silacara) 35. An Elementary Text Book of Hindu Religion and Morality (Theosophical Society) 36 Text Book of Universal Religion (Theosophical Society) 37 Asiatic Studies (Lyall) 38 Hindu Manners and Customs (Dubois) 39 Rig Vedic India (Dr. A C Dass) 40 Rig Vedic Culture (Dr A C. Dass) 41 Popular Hindusim 42. Hindu and Mohammedan Festivals (Dr J Murdoch) 43 Hindusim, Ancient and Modern (Baijnath) 44 D ccourses on Radhaswami Faith (Sahib Jı S .h.a) 45 Raj Yog (Vivekanand)

46 Indian Theism (N Macnicol) 47 Holy Bible 48. Life and Teachings of Lord Jesus Christ 49 Church History—Early Period (S Cheetham) 50. Catholic Encyclopaedia 51 Christian Dogma (L. Stone) 52 Layman's Mind on Creed and Church (J S. Templeton) 53 History of Persia (Sykes) 54 History of Persia Malcolm) 55 Zorastrian and some other systems (D J Medhora) 56 Zend Avesta (J Darmestater) 57. The Heart of Persia (E H. Skrine and E D. Ross) 58 The Desatir (D J. Medhora) 59 Literary History of Persia (Prowne) 60. Persian Literature, Ancient and Modern (Reed) 61 Table Talk of Mohamad (Lane Poole) 62 Speeches of Prophet Mohammed (Lane Poole) 63 Islam under the Caliphs of Bagdad (Osborne) 64 The Holy Koran 65 The Faith of Islam (F. ell) 66 The Philosophy of Islam (T. J Bor 67 The Spirit of Islam (Ameer Ali) 68 Mohammed and Mohammedanism (R B Smith) 69 The Religion of the Sikhs (Field) 70 Thoughts on Forms and Symbols in Sikhism (Gyani Sher Singh) 71 Guru

·Gobind Singh's Mission (Teja Singh) 72 The Sikh Prayer (Teja Singh) 73 Guru Gobind Singh—His life sketch 74 Fountain-Head of Religion (Ganga Prasad) 75 Eternal Truth (J P. Singhal) 76. Foundations of Religion (Stanely A Cook) 77. Origin and Development of Religious Belief (S Baring-Gould) 78 Psychology and the Religious Quest (R B Cattel).



विविध धर्माचार्यों के मन्तव्य

हिन्दुधर्म पर—विद्याभूषण प० श्री कृष्ण जोशी, बी०ए० यल० यल० बी० धर्म शिक्षक काशी हिन्दु विश्वविद्यालय से प्राप्त

श्री

श्री मान प्रोफेसर ज्वालाप्रसाद सिंहल महोदय आज समस्त संसार के धन्यवाद के पात्र हैं। आप ने कृपा करके अपने रचे हुए 'धार्मिक चारित्र' 'धार्मिक विवरण' 'धार्मिक सिद्धान्त' नाम तीन पुस्तकों को पढ़ने का जो मुझ को अवसर दिया है इस का मैं कृतज्ञ हूँ। मेरी सम्मति में यह ग्रन्थ बहुत उत्तम बन गये हैं। इन में आपने सब धर्मों की समानता विशेषता और सामञ्जस्य बतला कर संसार के परस्पर विवादी धर्मों के बीच शान्ति और प्रेम स्थापित करने का सूत्रपात किया है। लेखक महोदय ने जिस प्रकार सर्व धर्मों के मूल तत्वों का संग्रह किया है, उसी प्रकार हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों का भी उचित रीति से पर्यालोचन किया है। जटिल विषयों को इतनी सरल भाषा में लिखा है कि यह विद्यार्थियों के समझ में शीघ्र आ सकेंगे। धार्मिक चरित्र तो वास्तव में बालोपयोगी है जो मेरे ८ या १० वर्ष के बालक बालिकाओं ने बड़ी प्यार से पढ़ा। जो धार्मिक विवरण में हिन्दू धर्म का प्रकरण है वह विद्यार्थियों के लिये पर्याप्त है। इस पुस्तक की शैली बहुत अच्छी है। ऐतिहासिक रूप से इन ग्रन्थों को, विशेषकर धार्मिक सिद्धान्त को

लिखने में आपने अनुमान से काम लेकर पाश्चात्य लेखकों से भी अधिक सफलता प्राप्त की है। पुस्तकें आबाल वृद्ध सबके पढ़ने योग्य लाभदायक और उपादेय हैं। सार्वदेशिक सदाचार विषय को तो बहुत सुन्दरता से लिखा है। मात्सर्य और निन्दा से बचाकर केवल विशुद्ध गुणों को सर्व धर्मों से चुन चुन कर रखने में श्रीमान सिंहल जी ने नीर क्षीर विवेक दर्शाया है। मुझे आशा है कि ग्रन्थों को यथा योग्य आदर और प्रोत्साहन मिलेगा और सिंहल महाशय अपनी लेखनी द्वारा और और उत्तम गवेषणा पूर्ण धार्मिक ग्रन्थ लिख कर हिन्दी संसार की एक कमी को पूर्ण कर देंगे।

द० श्री कृष्ण जोशी

ता: २४-५-३४

اِسلام

میں نے حوالا پرشاد صاحب سنگھل ایم - اے - ایل ایل - بی کے مولفہ بات دھارمک وورن اور دھارمک سد ھادنت مذھب اسلام کے متعلق دیکھے - موصوف کی مذھبی خیالات کے لئے یہ سعی بہت قابل قدر ھے - میرے خیال میں اس مضمون اور خاصکر کل کتاب کے پڑھنے سے ناظرین پر مولف کی ایک ایسی شخصیت کی تجلی پڑیگی جس سے انکے قلوب ایک بڑی حد تک مذھبی تعصبات میں پڑنے کے بجائے اسے آزادی کی طرف مائل ہو جائینگے اور عجب نہیں کہ اس کوشش سے مولف کا یہ مقصود بھی ہو - تحریر کا طرز صاف

اور منعمانہ ھے — اسلامی خیالات کے بیان کرنے میں بعض مقامات پر کسی قدر کمی بیشی تھی لیکن وہ ناقابل توجہ توی — اور میں نے اسے درست کردیا ھے - اور میرے خیال تمام اسکول طلبہ کے لئے یہ بالکل کافی ھے —

دستخط - حبیب الرحمن شاستری - فاضل الہیات
معلم مسلم یونیورسٹی - علیگڑھ ۳۱ مئی ۳۴ء

اِسلام

QAZI ABDUL AZIZ KHAN ,

Sanyogitaganj

Indore (C. I) 15 - 10 - 1935

میرے محترم جناب پروفیسر حوالا پرشاد صاحب سنگہل ایم - اے - ایل ایل بی نے دو کتابیں ایک دھارمک ووِن اور دوسری دھارمک سدھانت جو تصنیف فرمائی ہیں انکے بعض حصص مختلف مقامات سے آپ نے مجھے پڑھکر سنائے جو کچھ میں نے سنا اسکی بنا پر یہ عرض کرتا ھوں کہ آپ نے بے تعصبی اور دلسوزی سے اس خدمت کو انجام دیا ہے - اسلام کے احکامات خصوصا نماز روزے وغیرہ کے متعلق جو کچھ آپ نے تحریر فرمایا اسکے درست ہونے میں کوئی کلام نہیں ھوسکتا البتہ مقدم کے متعلق جو آپ نے لکھا ہے وہ مخصوص رسم و رواج کی بنا پر لکھا ہے - کاش یہ قسم نہیں مذھبی متعلق تھا

سے لکھا جاتا تو بہت بہتر ہوتا - میری رائے میں یہ کتاب مدراس کے نصاب میں شریک کرنے کے لئے بہترین اور نہایت مفید ثابت ہوگی - جو لوگ یہ چاہتے ہیں کہ ہندوستان کی اقوام ہندو مسلمان ایک دوسرے کے مذہب سے واقف ہوں انہیں چاہئے کہ وہ اس قسم کی کتابیں اپنے بچوں کو پڑھائیں -ایسی کتابوں کے رائج ہونے سے بہت سی غلط فہمیاں بھی دور ہوسکتی ہیں - مجھے امیدھے کہ برادران قوم و ملت پروفیسر صاحب کی بے تعصبی اور پاکیزہ خیال کی قدر کرینگے —

دستخط عبدالعزیز خاں

قاضی سنیونتا کلبج - ادور

ON CHRISTIANITY

The Rev. Y Masih, D D. Canadian Mission,

11th June 1934 Indore, Central India.

A series of three text books called "Dharm Pathmala" prepared under the patronage of the Government of His Highness the Maharaja Holker of Indore is being issued for the school students of the State. I have gone over the portions

relating to Christianity and can say without hesitation that they are written with an unprejudiced mind and are as fair as could be and I think they are sufficient for students of public Schools. I admire the spirit of Holker Government in encouraging this work and congratulate Prof. J. P. Singhal for his great work. He has a rare gift for writing such books. He has wonderfully done this heavy work in writing on various religions and sects in India. He deserves our gratitude. This series will give moral and religious teaching to students which is lacking in our present educational system and help them to know not only their own religion but the religions of other students as well and thus help killing that communal strife and tension which is growing in India and has become a serious obstacle in the progress of our Motherland.

We should thank Prof. Singhal and the Holker Government for this work,

Sd. Y. Masih.

ON SIKKHISM.

I have read the chapters on Sikkhism in "Dharmik Vivaran" and "Dharmik Siddhanta" by Mr. Jwala Prasad Singhal. I find they are written with a deep and intimate knowledge of facts about Sikhism, and the sympathy shown therein with the Sikh ideals and institutions is rare and unequalled by any non-Sikh writer whom I have read so far. It is a fairly correct version of Sikhism and I can recommend it safely for the use of Sikh students. I think that it will be sufficient for the school students of Middle Classes.

SD TEJA SINGH, M. A.
Professor Khalsa College, Amritsar.
7-7-34.

Cubicles Hostel,
Khalsa College,
Amritsar
Dated July 8, 1934.

I have carefully gone through the chapters

on Sikhism in the Dharmik Vivaran and Dharmik Siddhant by Prof. Jwala Prasad Singhal, M. A., LL. B, F. R. E. S. I am glad to say that he has treated this subject most sympathetically and has given the Sikh view in fairly good manner. In my opinion he has given a correct version of Sikh religion.

These books will surely be most useful for the Indian students of all shades of opinion.

Sd. Sahib Singh, B A.
Lecturer in Punjabi and
Divinity

Amritsar,
Dated 8th July 1934.

I have gone through the chapters on Sikhism by Professor Jwala Prasad, M. A, LL B., F. R. E. S., from his books "Dharmik Vivaran" and "Dharmik Siddhanta" and I feel great pleasure in being able to say that he has dealt with the subject very ably and thoroughly. he has described the Sikh religion in a nutshell.

To be frank he has done a service to the Sikh Public by writing these books, and I hope that the educated Sikhs will appreciate the labours of the learned author.

I can confidently say that these book will prove very useful for the rising generation.

Sd. Amar Singh, B. A. B. T.,
Assistant Secretary,
Chief Khalsa Diwan.

ON ZORASTRIANISM. Translated from Gujrati.

From Mr. Dorabji Sorabji, Priest of the Parsees, Indore

I have great pleasure in saying that I have examined the two books "Dharmik Vivaran" and "Dharmik Siddhant" written by Prof. Jwala Prasad, M. A., LL. B, in which he has given the principles and customs of Parsee Religion and I express my complete satisfaction with them He has treated the subject with great labour and ability and has given all things in a

brief compass, and in a way in which they can be easily understood. I hope a study of these books will be made compulsory in the schools of all communities so that all students may by able to know their own religion and also the religions of their other fellow brethren, and the labours of the writer may be fruitful.

Sd. Dorabji Sorabji.

Indore. 16-6-31.

जैन धर्म

श्री सन्माननीय प्रोफेसर ज्वालाप्रसाद जी सिंहल एम० ए० ने जो "धार्मिक विवरण" और "धार्मिक सिद्धान्त" नामक पुस्तकें लिखी हैं उनमें जैन धर्म सम्बन्धी जो अध्याय हैं मैंने देखे हैं।

प्रोफेसर साहब ने एक अजैन होते हुए भी जैन धर्म सम्बन्धी जिन बातों पे लिखा है वह पक्षपात रहित अच्छे शब्दों में लिखा है। यद्यपि जैन धर्म के पारिभाषिक शब्दों से ही प्रायः लोक अपरिचित हैं फिर उनको सर्वसाधारण विद्यार्थियों की समझ में आ सकने लायक भाषा में व्याख्या करना अति कठिन काम है परन्तु सन्तोष की बात है कि प्रोफेसर साहब ने इस सरल भाषा में उनकी व्याख्या की है कि जिनसे साधारण बुद्धि रखनेवाला भी आसानी से समझ जायगा। इन्होंने जहाँ

कहीं जो भूलें मालूम हुईं वे मैंने ठीक करा दी हैं। यद्यपि जैन वाङ्मय बहुत विस्तीर्ण एवं गम्भीर है फिर भी इतने लिखने से साधारणतया विद्यार्थियों के लिये पर्याप्त जानकारी हो सकेगी।

विविध धर्मावलम्बियों मे परस्पर सहानुभूति पैदा करने के उद्देश्य से ऐसी पुस्तकों का लिखा जाना बहुत ही श्रेयस्कर है। इसके लिये श्रीमन्त होलकर सरकार का यह प्रयत्न सराहनीय एव प्रशसनीय है। मुझे आशा है कि ये पुस्तकें बहुत कुछ लाभप्रद होंगी।

द० वंशीधर जैन

जवरी बाग ता० ७-१०-३५ | स्याद्वादवारिधि, जैन सिद्धान्त महोदधि, न्याया-लकार, प्रधानाध्यापक—सर सेठ स० हु० दि० जैन महाविद्यालय इन्दौर

ON BUDDHISM.

Maha Bodhi Society

Holy Isipatana, Sarnath Benares.

Dated 26th May 1934

I have seen the account of Buddhism given in the books Dharmik Vivaran and Dharmik Siddhant by Prof. J. P. Singhal, and have corrected the mistakes that I found in them, which,

however, were not many. I think that the account given by Prof Singhal is fair and unprejudiced and will be sufficient for school students. I wish every success to Prof. Singhal's commendable endeavour.

Sd. K Siriniwasa

Bhikshu K. Siriniwasa, Sthavir,

Bhikshu-in-charge, Rishi-patan Mrigadya

Mulgandhkuti Vihara, Sarnath, Benares.

धर्म पाठशाला—धार्मिक विवरण भाग २

धार्मिक व्याख्या

हिन्दू धर्म

१—मुख्य सिद्धान्त

१—हिन्दू धर्म एक सामाजिक धर्म है। हिन्दू समाज में सम्मिलित हो जाने से ही हिन्दू हो जाता है। उस समाज में अनेक प्रकार के धार्मिक विश्वास हैं। उनमें से किसी पर भी आरूढ़ रहने से हिन्दू बना रहता है। भिन्न भिन्न मनुष्यों की मानसिक उन्नति भिन्न भिन्न दर्जे की होती है। उनकी प्रकृति भी भिन्न भिन्न होती है। इसलिये सब मनुष्यों का एक ही विश्वास होना असम्भव है। इसी कारण हिन्दू धर्म सब को अपने धार्मिक विश्वास की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। हिन्दू समाज में सम्मिलित होने से मनुष्य अनेक प्रकार के धार्मिक विश्वास वाले मनुष्यों के सम्पर्क में आता है और

सम्मिलित रहते हैं। इसीलिये हिन्दू समाज में बहुत से पन्थ बन गये हैं। जिनका एक सा विश्वास हुआ उनका एक भिन्न पन्थ या सम्प्रदाय हिन्दू समाज के अन्तर्गत बन जाता है।

२—परन्तु हिन्दू समाज के अन्तर्गत प्रायः सभी सम्प्रदाय दो सिद्धान्तों को अवश्य मानते हैं। १ कर्म सिद्धान्तः—प्रत्येक मनुष्य अपने कर्म के अनुसार फल भोगता है। उसके इस जीवन की अवस्था उसके पूर्व जन्म के कर्मों का परिणाम है। इसका यह अर्थ नहीं है कि इस जीवन मे वह स्वतन्त्रता से कार्य नहीं कर सकता। यह ठीक है कि उसका मन, उसकी बुद्धि और उसकी सासारिक परिस्थिति सभी उसके पहले कर्मों से बने हैं। और उसी मन, बुद्धि और परिस्थिति के अनुसार वह अब भी कर्म करेगा। जैसे चोर का मन, बुद्धि और चोरों की सगति उसको पूर्व कर्मो से ही मिली है और इस समय इन बातों के प्रभाव से उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति भी चोरी की ओर होगी। फिर भी उसके लिये यह सम्भव है कि वह इस जन्म मे चोरी छोड कर अपने कर्मों को सम्हाल ले। उसके अपने मन और बुद्धि तो उसे चोरी की ओर ही प्रेरित करेंगे परन्तु धर्म शास्त्र और सामाजिक विचार उसको चोरी का पाप होना बताते रहते हैं। इससे उसके मन में विचार तारतम्य उपस्थित हो सकता है और वह अपने पूर्व कर्मो से बनी हुई मानसिक वृत्ति को इस जन्म मे सामाजिक सत्सग से उत्पन्न ज्ञान द्वारा रोक सकता है और बदल सकता है। यदि वह बदल देगा तो उसकी आगे की परिस्थिति बदल जायगी और यदि वह अब भी चोरी ही करेगा तो उसकी चोरी की वृत्ति बढ़ती चली जायगी। यहाँ तक कि कोई बडा भारी दुख

व धक्का, जैसे कठोर दड या किसी सन्त का अकस्मात् सत्संग, उसे एक साथ दूसरी ओर ले जायगा और उसके कर्म बदलने लगेंगे । २—दूसरा सिद्धान्त है पुनर्जन्म और मुक्ति का—जब तक मनुष्य के कर्म से उत्पन्न स्वभाव आदि नष्ट नहीं हो जाते उस समय तक उसको बार बार जन्म धारण करना पडेगा। यह कर्म से उत्पन्न स्वभाव ही सस्कार कहलाते हैं। जब तक सस्कार रहते हैं मनुष्य उन सस्कारों के अनुसार जन्म लेता रहता है। जब वह सस्कार नष्ट हो जाते हैं तो मनुष्य की आत्मा सस्कारों से रहित होकर शुद्ध हो जाती है। और फिर उसको ससार में जन्म लेने का कारण नहीं रहता। इसी शुद्धता को प्राप्त कर लेने से ही मुक्ति, मोक्ष निर्वाण या कैवल्य प्राप्ति कहते हैं।

सस्कार शब्द का एक दूसरा अर्थ भी है। उन दूसरे अर्थ में सस्कार उस धर्म सम्बन्धी विधि को कहते हैं जो कि किसी विशेष अवसर पर प्रयोग में लाई जाय। जैसे विवाह सस्कार, उपनयन सस्कार इत्यादि।

स्वरूप बिलकुल वैसा नहीं है जैसा कि वैदिक धर्म का है, परन्तु फिर भी उसकी जड़े वेदों में ही जमी हुई हैं। कोई वेदों को ईश्वर का दिया हुआ ज्ञान कहते हैं। कोई ज्ञान ही नहीं वरन् अक्षर व भाषा भी ईश्वर की कही हुई बताते हैं। और कोई उनको ज्ञानी ऋषियों के बनाये हुए बताते हैं, परन्तु वेदों को हिन्दू धर्म का मूल सभी मानते हैं।



२—सिद्धान्त विचार

ईश्वर सम्बन्धी सिद्धान्त:—प्रायः सभी हिन्दू ससार के अधीश्वर एक भगवान व ईश्वर को मानते हैं। यह ईश्वर सर्व शक्तिमान, सर्व व्यापक, सर्वज्ञ, निराकार, निर्विकार, अनिवर्चनीय (जिसका वर्णन न किया जा सके) है। यह सबको उनके कर्मों के अनुसार फल देने वाला है और ससार का कर्ता है और सब का शासक है। अनादि है और अनन्त है। ऐसे ईश्वर को ब्रह्म कहते हैं।

मनुष्य का जीवात्मा उसके शरीर से पृथक है, अमर है, कभी न मरता है और न जीता है। केवल एक शरीर को छोड़ कर अपने सस्कारों के अनुसार दूसरे शरीर को ग्रहण करता है, और इसी को आवागमन कहते हैं। जब उसके सब सस्कार समाप्त हो जाते हैं तो वह शुद्ध स्वरूप मुक्त अवस्था को प्राप्त होता है और आवागमन से छूट जाता है।

कोई तो ईश्वर, जीवात्मा और जड़ प्रकृति को पृथक पृथक वस्तुए मानते हैं जो सदैव से चली आ रही हैं और सदैव रहेंगी। जीव

व जड प्रकृति को मिला कर ईश्वर ससार बना देते हैं। और कोई लोग जीव को ब्रह्म का ही अश, ईश्वर के ही नूर का ज़र्रा मानते हैं और कहते हैं कि ससार ईश्वर मे से ही प्रकट होता है और उसी में लय हो जाता है। जैसे मिट्टी में से घडा बने और फिर मिट्टी में लय हो जाय। परन्तु साधारण दशा में ब्रह्म व सस्कार-युक्त जीवात्मा की भिन्नता सब ही मानते हैं।

परन्तु कोई तो ईश्वर के दो प्रकार के स्वरूप मानते हैं और कोई एक। जो लोग ईश्वर को एक निराकार स्वरूप ही मानते हैं वे यह स्वीकार नहीं करते कि ईश्वर मनुष्य रूप में अवतार ले सकता है। यह लोग जीवात्मा को ईश्वर से पूर्णतया भिन्न मानते हैं इसलिये ईश्वर का जीवात्मा के स्वरूप मे आना असम्भव समझते हैं। यह प्राय आर्य-समाजी व ब्रह्मसमाजी होते हैं।

विलीन हो जायगी। उसकी पृथक्ता का पता भी न रहेगा। ज़र्रा नूर में मिल जाता है।

सन्त-मत वाले सन्तों को भी इसी ईश्वर का अवतार मानते हैं। यह अवतार ईश्वर ने धारण नहीं किये वरन् मनुष्य की जीवात्मा पवित्र होते होते जब ईश्वर रूप हो गई तो वह सन्त कहलाई। परन्तु राधास्वामी लोग अपने धर्म प्रवर्तक को अवतार ही मानते हैं। इसीलिये वे लोग अपने गुरुओं की वाणी को सर्वोच्च मानते हैं और अपने जीवन के लिये उन्हीं का आधार रखते हैं।

नर्क व स्वर्गः—जो लोग बुरे कर्म करते हैं वे पशुओं के शरीर को पाते हैं। परन्तु यदि घोर पाप कर्म करें तो पशुओं के जीवन से भी अधिक कष्टदायी नर्कों मे पडते हैं। नर्क में यमराज का अधिकार है। यमराज प्रत्येक मनुष्य के कार्यों की पडताल करते हैं और उसके कार्यों के अनुसार उसको दड देने के लिये उसके योग्य नर्क में डाल देते हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के पापियो के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के नर्क हैं। जो लोग धर्मात्मा होते हैं उनको स्वर्ग मिलता है। जैसे नर्क अनेक हैं वैसे ही स्वर्ग भी अनेक है। मुख्य मुख्य देवताओं के भिन्न भिन्न लोक हैं। जैसे इन्द्र का इन्द्रलोक, ब्रह्मा का ब्रह्म लोक, वरुण का वरुणलोक इत्यादि। भगवान विष्णु का लोक वैकुंठ कहलाता है और वह सर्वोच्च स्वर्ग है। यहाँ सब प्रकार के सुख और भगवान के दर्शन मिलते हैं।

जब मनुष्य के जीव को उसके पाप कर्मों का दड नर्क में मिल

चुकता है तब वह फिर अपने धर्म कार्यों का फल भोगने को स्वर्ग में जाता है और जब स्वर्ग में भी फल भोग लेता है तब फिर संसार में मनुष्य शरीर में जन्म लेता है। जिसके पाप कर्म अधिक होते हैं वह पहले स्वर्ग में धर्म कार्यों का फल भोग कर फिर नर्क मे दंड पाता है, और जिसके धर्म अधिक होते हैं वह पहले नर्क में दंड पाकर फिर धर्म कार्यों का फल स्वर्ग में पाता है। इसके पीछे फिर से मनुष्य शरीर को प्राप्त करके उसे ऐसे कार्यों के करने का अवसर मिलता है जिनसे वह मुक्ति प्राप्त कर सके, और जब तक मुक्ति प्राप्त न कर ले तब तक यह चक्कर चलता ही रहता है। नर्क व स्वर्ग सम्बन्धी यह विचार ईसाई और मुसलमानों के दोजख व बहिश्त अथवा हैल व हैविन से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं।

विलीन हो जायगी। उसकी पृथक्ता का पता भी न रहेगा। ज़र्रा नूर में मिल जाता है।

सन्त-मत वाले सन्तों को भी इसी ईश्वर का अवतार मानते हैं। यह अवतार ईश्वर ने धारण नहीं किये वरन् मनुष्य की जीवात्मा पवित्र होते होते जब ईश्वर रूप हो गई तो वह सन्त कहलाई। परन्तु राधास्वामी लोग अपने धर्म प्रवर्तक को अवतार ही मानते हैं। इसीलिये वे लोग अपने गुरुओं की वाणी को सर्वोच्च मानते हैं और अपने जीवन के लिये उन्हीं का आधार रखते हैं।

नर्क व स्वर्गः—जो लोग बुरे कर्म करते हैं वे पशुओं के शरीर को पाते हैं। परन्तु यदि घोर पाप कर्म करें तो पशुओं के जीवन से भी अधिक कष्टदायी नर्कों में पड़ते हैं। नर्क में यमराज का अधिकार है। यमराज प्रत्येक मनुष्य के कार्यों की पड़ताल करते हैं और उसके कार्यों के अनुसार उसको दण्ड देने के लिये उसके योग्य नर्क में डाल देते हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के पापियों के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के नर्क हैं। जो लोग धर्मात्मा होते हैं उनको स्वर्ग मिलता है। जैसे नर्क अनेक हैं वैसे ही स्वर्ग भी अनेक हैं। मुख्य मुख्य देवताओं के भिन्न भिन्न लोक हैं। जैसे इन्द्र का इन्द्रलोक, ब्रह्मा का ब्रह्म लोक, वरुण का वरुणलोक इत्यादि। भगवान विष्णु का लोक वैकुण्ठ कहलाता है और यह सर्वोच्च स्वर्ग है। यहाँ सब प्रकार के सुख और भगवान के दर्शन मिलते हैं।

जब मनुष्य के जीव को उसके पाप कर्मों का दण्ड नर्क में मिल

चुकता है तब वह फिर अपने धर्म कार्यों का फल भोगने को स्वर्ग में जाता है और जब स्वर्ग में भी फल भोग लेता है तब फिर संसार में मनुष्य शरीर में जन्म लेता है। जिनके पाप कर्म अधिक होते हैं वह पहले स्वर्ग में धर्म कार्यों का फल भोग कर फिर नर्क में दण्ड पाता है, और जिनके धर्म अधिक होते हैं वह पहले नर्क में दण्ड पाकर फिर धर्म कार्यों का फल स्वर्ग में पाता है। इसके पीछे फिर से मनुष्य शरीर को प्राप्त करके उसे ऐसे कार्यों के करने का अवसर मिलता है जिनसे वह मुक्ति प्राप्त कर सके, और जब तक मुक्ति प्राप्त न कर ले तब तक यह चक्कर चलता ही रहता है। नर्क व स्वर्ग सम्बन्धी यह विचार ईसाई और मुसलमानों के दोज़ख व बहिश्त अथवा हैल व हैविन से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं।

परन्तु बहुत से लोग इन बातों को नहीं मानते। उनके विचार में नर्क और स्वर्ग कोई अन्य लोक नहीं हैं वरन पृथ्वी पर ही स्वर्ग व नर्क लोक हैं। मनुष्य शरीर में ही अनेक प्रकार के दुख व कष्ट होते हैं। बहुत से मनुष्यों का जीवन नर्क के दुख के समान ही होता है, उन दुखों के भी असख्य भेद व दर्जे हैं। इस प्रकार सब प्रकार के पाप कर्मों का दड मिलने के लिये ससार ही में पर्याप्त प्रबन्ध है। फिर और नर्कों की क्या आवश्यकता है। जिस रोगी का शरीर सड रहा है वह राध के नर्क में ही पडा है। जिसके तीव्र शूल हो रहा है वह भालों से ही छेदा जा रहा है। इसी प्रकार सुखों के भी अनेक प्रकार व दर्जे हैं और लोगों को स्वर्ग का सुख भी यहीं मनुष्य शरीर में प्राप्त हो जाता है। इसलिये पृथक स्वर्ग की भी आवश्यकता नहीं है। यह विचार

वैदिक हिन्दुओं के हैं जैसे कि आर्य समाजी। पौराणिकों में भी नवीन विचार वाले सुशिक्षित लोग इस विचार के हैं।

देवता:—वैदिक देवता मुख्यतः इन्द्र, वरुण, अग्नि, वायु, सूर्य, व हिरण्यगर्भ, मित्र, प्रजापति और शिव व रुद्र हैं। परन्तु ये पृथक पृथक देवता नहीं हैं। वरन् एक ही ईश्वर के भिन्न भिन्न स्वरूपों व शक्तियों के नाम हैं। प्रत्येक देवता के स्वरूप मे किसी प्राकृतिक शक्ति के स्वरूप का वर्णन है और उस शक्ति की उपयोगिता की प्रशंसा है। वैदिक हिन्दू देवताओं को इसी स्वरूप मे मानते हैं। इसलिये उनके सम्बन्ध मे वेद मन्त्रों को एक ईश्वर के ही प्रति कहे हुए मानकर, उसकी भिन्न भिन्न शक्तियों का चिन्तन करके उच्चारण करते हैं। इन देवताओं की पृथक पृथक पूजा नहीं करते और न किसी की मूर्ति बनाते हैं।

पौराणिक—पौराणिक देवता मुख्यतः विष्णु व लक्ष्मी, ब्रह्मा व सरस्वती, शिव व पार्वती, गणेश, सूर्य, अग्नि, प्रजापति, वायु, इन्द्र, वरुण, कुबेर और दुर्गा हैं। विष्णु के अनेक स्वरूप हैं। जैसे सत्य-नारायण, नरसिंह, राम, कृष्ण इत्यादि। इनके अतिरिक्त और असंख्य देवता हैं। देवताओं की पूरी संख्या तेंतीस करोड़ कही जाती है, परन्तु वे सब साधारण हैं। उनकी पूजा नहीं होती। उपर्युक्त देवताओं मे से भी पूजा तो अधिकतर विष्णु, शिव, लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, दुर्गा, गणेश, सूर्य और ब्रह्मा जी की होती है। यह देवता सगुण स्वरूप हैं और मनुष्य के समान ही उनकी मूर्तियाँ हैं।

हुई अथवा शेषनाग पर सोते हुए विष्णु के पैर दबाती हुई चित्रित की जाती हैं।

ब्रह्मा:—इनका मन्दिर अजमेर के पास पुष्कर तीर्थ में है। यह संसार के बनाने वाले हैं। यह विष्णु की नाभि से पैदा होते हैं और एक कमल के फूल पर बैठे हुये होते हैं। इनके चार मुख और चार भुजाएं होती हैं। हाथों में माला, कमंडल और वेद तथा कमल का फूल होते हैं। ये चारों मुखों से चारों वेदों का ज्ञान संसार को प्रदान करते हैं और मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों के अनुसार उनका भाग्य नियत करते हैं। इनकी सवारी हंस की है।

सरस्वती:—यह ब्रह्मा की पुत्री और विद्या व वाणी की देवी हैं। ये ब्रह्मलोक मे रहती हैं। इनकी सवारी मोर की है और चार भुजाओं वाली इनकी मूर्ति है। एक हाथ में कमल, एक में माला लिए हुए हैं, और दो हाथो से सितार बजाती हैं अथवा वेदों के ज्ञान का प्रचार करती हैं।

शिव.—इनको रुद्र, शंकर, भैरव व ईश भी कहते हैं। ये संसार का नियत समय समाप्त होने पर उसको नष्ट करने वाले हैं कि जिससे फिर नया संसार बन सके। इनकी तीन प्रकार की मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। एक तो एक योगी के समान जो शेर की खाल पर समाधि लगाये बैठे हो, दूसरी पाँचमुखों वाले योगी की, और तीसरी अंगूठे के समान एक पत्थर की शिला की। योगी के स्वरूप मे इनकी भुजाएँ चार होती हैं जिनमें त्रिशूल, डमरू, कमल और माला होती है। अंगूठे के समान पत्थर की शिला इसलिये बनाते हैं कि साधन करने वाले योगी

को जब शिव के दर्शन होते हैं तो एक ज्योति के समान परम प्रकाश-वान लोक सी दिखाई देती है। इसी का चिह्न स्वरूप मूर्ति में रखते हैं। इस स्वरूप की मूर्तियाँ मोहनजोदड़ो की खुदाई में भी मिली हैं। इससे ज्ञात होता है कि शिव की इस स्वरूप में पूजा हजारों वर्ष से प्राचीन सभ्यता में भी होती थी। कहते हैं कि गङ्गा जी इनके सिर पर जटाओं में से निकली हैं इसलिये इनके सिर पर जटाओं में एक देवी का मुख बनाया जाता है। इनके मस्तक पर दोज का चन्द्रमा बना रहता है। इनके गले में सर्प लिपटे रहते हैं। एक बार इन्होंने देवताओं को बचाने के लिये विष, जो देवताओं के पीने के लिये था, आप पी लिया। इन पर विष का तो कुछ प्रभाव न हुआ परन्तु उसको गले में धारण करने से उनका गला नीला पड़ गया। इसीलिये इनको नीलकंठ महादेव भी कहते हैं। इनका रंग बर्फ के समान श्वेत रंग का है। हिमालय का कैलाश पर्वत इनके रहने का स्थान है। शिव की सवारी बैल की है। शिवजी आसुतोष (शीघ्र प्रसन्न होने वाले) और औढरदानी कहलाते हैं। इनकी मूर्ति से संयम और योग साधन का आदर्श उपस्थित होता है। कहते हैं कि जिस समय संसार की प्रलय होती है तो यह नाचते हैं। उस समय इनके मुख से अग्नि निकलती है जिससे संसार भस्म हो जाता है। इस नाच को तांडव नृत्य कहते हैं।

पार्वतीः—यह शिवजी की स्त्री हैं। इनकी पूजा स्त्रियां करती हैं क्योंकि पार्वती आदर्श स्त्री थीं। इसलिये स्त्रियां इनको मानती हैं और इनके गुणों का अनुकरण करती हैं।

दुर्गाः—इनके अनेक स्वरूप हैं। काली देवी भी इन्हीं का स्वरूप

हैं। भिन्न भिन्न स्थानो पर इनके भिन्न भिन्न नाम और स्वरूप हैं। जैसे विन्ध्यवासिनी देवी, ज्वालादेवी (नगरकोट, जिला करनाल मे)। यह शक्ति की देवी हैं। इनके सम्बन्ध मे कथाए प्रचलित हैं कि इन्होंने शुम्भ, निशुम्भ, महिषासुर आदि अनेक राक्षसों को मारा था। इनकी सवारी भी सिंह की है।

गणेशः—इनका मुख हाथी की सूँड़ के समान है। यह शिवजी के पुत्र हैं। बुद्धि व विद्या के देवता हैं। इनकी सवारी चूहे की है। कुछ लोगो का विचार है कि इनके ऐसे स्वरूप बनने का कारण योग की क्रिया की ओर सकेत करना है। इसका वर्णन आगे होगा।

सूर्य —सूर्य को ही हिरण्यगर्भ भी कहते हैं। इनको यथार्थ में ईश्वर का प्रत्यक्ष साकार स्वरूप कहा जा सकता है। क्योंकि यही सारे सूर्य मडल के आधार केन्द्र और शक्ति प्रदान करने वाले हैं। पृथ्वी आदि के बनने मे यही विशेष कारण हैं। इनकी पूजा प्रायः प्रातःकाल सूर्य के सन्मुख होकर स्तुति करके अर्घदान (जल छोड) कर की जाती है। उस समय सीधे हाथ की अगुली और अँगूठे से एक गोल छिद्रसा बना कर उसमें से सूर्य देव के दर्शन किये जाते हैं। यह दर्शन प्राय ऊगते हुए सूर्य के करने चाहिये जब कि उसका प्रकाश इतना तीव्र न हुआ हो कि नेत्रों को कष्टदायी हो। इस दर्शन से सूर्य के किनारो की किरणे जो नेत्रो को कष्ट देती हैं रुक जाती हे और मध्य भाग की किरणें जो हितकर हैं उनके दर्शन होते हैं।

गगा —बहुत से हिन्दू गगा की पूजा करते हैं। गगाजी के किनारे किनारे मन्दिर होते हैं जिनमे गगाजी की मूर्ति होती है और उसकी पूजा

अन्य देवताओं के समान नित्य प्रति की जाती है। गंगा जी के पानी में स्वर्ण का अंश मिला रहता है। रासायनिक द्रव्य और पदार्थ भी मिले रहते हैं जिनके कारण गंगा जल रखा रहने से भी नहीं सड़ता। गंगा जल से शरीर के रोग भी अच्छे हो जाते हैं। इसकी इस पवित्रता के कारण ही गंगा को पापनाशिनी कहा जाता है और गंगा जल को सब अपवित्राओं को दूर करने वाला कहा जाता है।

हनुमानजी:—इन देवताओं के अतिरिक्त हनुमान जी की पूजा भी बहुत होती है। हनुमानजी ने रामचन्द्र जी को लंका जीतने में बड़ी सहायता दी थी। यह राम जी के बड़े भक्त और बड़े पण्डित थे। यह शक्ति के देवता समझे जाते हैं। कहते हैं कि स्वयं शिवजी ने इनके स्वरूप में रामजी की सहायता करने को अवतार लिया था। इनकी मूर्ति लाल रंग की, बन्दर-मुख की, बड़ी बलवान, पहाड़ उठाये हुए और गदा लिये हुए बनाई जाती है।

देवताओं के ये स्वरूप यथार्थ में किसी न किसी भाव का संकेत स्वरूप होते हैं और भक्त के मन में उस भाव को प्रकट करके किसी न किसी गुण का उत्थान करते हैं। चार भुजाएं प्रायः उनको मनुष्य जाति से भिन्न करने के लिये और अधिक बलवान और शक्तिशाली बताने के लिये बनाई जाती हैं। विष्णु की मूर्ति ऐश्वर्य से पूर्ण है। जिसके दर्शन से मनुष्य के मन को आकर्षण होता है और ऐसे भगवान के प्रति भक्ति और प्रेम के भाव जाग्रत होते हैं। विष्णु के शेषनाग पर सोने और उनकी नाभि से ब्रह्मा के उत्पन्न होने का चित्र सृष्टि पैदा होने की क्रिया को बताता है। परन्तु उस क्रिया का इस छोटी सी पुस्तक

में वर्णन करना सम्भव नहीं है। ब्रह्मा की मूर्ति ज्ञान का भंडार, शिव की मूर्ति संयम और विरक्त भाव का आदर्श, लक्ष्मी की मूर्ति ऐश्वर्य का स्वरूप, सरस्वती की मूर्ति विद्या का केन्द्र प्रतीत होती है। इस प्रकार अन्यों के भी कुछ न कुछ भाव विशेष हैं।

३—मुक्ति के उपाय

मनुष्य के प्रत्येक कर्म का प्रभाव उसके जीव के स्वरूप पर पड़ता है। उसी प्रभाव को संस्कार कहते हैं। यह संस्कार जितने अधिक होंगे उतना ही जीव का स्वरूप शुद्ध स्वरूप से भिन्न होगा जब यह सब प्रभाव नष्ट हो जायँगे तो जीव का स्वरूप फिर से शुद्ध हो जायगा। जो जीव को ईश्वर परमात्मा का अंश मानते हैं उनके अनुसार जीव शुद्ध होकर फिर परमात्मा स्वरूप ही हो जायगा और जो उसको पृथक मानते हैं उनके अनुसार जीवात्मा फिर शुद्ध होकर जन्म मरण से रहित हो सदैव ईश्वर के समीप ही रहेगा।

किसी शरीरधारी जीव के तीन प्रकार के कर्म होते हैं। एक तो प्रारब्ध कर्म यह तो वह है जिनके अनुसार उसने यह शरीर पाया है। इन कर्मों का फल तो उसको मिल गया। इसी को भाग्य कहते हैं। इसीलिए अब उनके नष्ट करने का कोई प्रयोजन ही नहीं रहा। दूसरे कहलाते हैं संचित कर्म। यह वह संस्कार हैं जिनका फल अभी नहीं मिला। इन संचित कर्मों को उपायों द्वारा नष्ट किया जा सकता है। परन्तु केवल इनके नष्ट करने से काम नहीं चलेगा क्योंकि यदि वर्तमान या

क्रियमाण कर्म होते चले जायगे तो भविष्य के लिये सस्कार बंधते चले जांयगे। इसलिये मुक्ति नहीं होगी।

वर्तमान मे कर्म दो प्रकार के हो सकते हैं:—१—सकाम कर्म:—यह वह कर्म हैं कि जो किसी इच्छा से फल की आशा सहित किये जाय। इनमें मन, बुद्धि, इन्द्री आदि सभी लगे रहते हैं और इनका प्रभाव सस्कार रूप में जीवात्मा पर पडता है। दूसरे हैं निष्काम कर्म:—इन कर्मो में क्रिया के साथ फल की आशा व चिन्ता नहीं होती। इस लिये इन क्रियाओं में मन व बुद्धि लिप्त नहीं होते वरन् क्रिया को शान्त निष्पक्ष भाव से देखते रहते हैं। ऐसी क्रिया से सस्कार नहीं बंधते। जैसे यदि कोई सोते में हाथ चलावे तो उससे कुछ सस्कार न बनेंगे परन्तु कोई जान बूझ कर चोरी करने के लिये हाथ चलावे तो सस्कार अवश्य बनेंगे। निष्काम कर्म भी दो प्रकार के हो सकते हैं:—१—नित्य कर्म, जो नित्य प्रति साधारण जीवन व्यतीत करने के लिये, अथवा नित्य का धार्मिक कार्य बिना किसी फल की इच्छा किये हुए किये जाय, जैसे शौच कर्म और पच यज्ञ। २—निमित्त कर्म, यह वह कर्म हैं जो किसी निमित्त कारण के उपस्थित होने पर किये जाते हैं। परन्तु उनको अपने स्वार्थ की चिन्ता करके न किया जाय। जैसे यदि परिवार की रक्षा के लिये कोई उद्योग करे, परन्तु उद्योग करने में लोभ से प्रेरित न हो, वरन् अपनी शक्ति पर प्रयत्न करके जो प्राप्त हो उसमें सन्तोष करे। स्वयं भोजन इस विचार से करे कि जिससे अपने पारिवारिक व सामाजिक धर्म का पालन कर सके और शरीर स्वस्थ बना रहे। न कि उसका स्वाद लेकर प्रसन्न हो। कहीं जाने का कारण उपस्थित हो

तो अवश्य जावे परन्तु केवल सैर करने के लिये जाने की इच्छा न करे। अथवा यो कहिये कि उसका जीवन पूर्णतया धर्म के लिये ही हो। इस प्रकार के कर्म करने वाले के वर्तमान कर्म सस्कार नही बनाते। यदि सकाम कर्म न करके केवल निष्काम कर्म ही किये जाय तो वर्तमान कर्मों से तो सस्कार न बनेंगे परन्तु पूर्व जन्मों के संचित कर्म तो रह ही गये। जब तक वह नष्ट न होंगे उस समय तक और शरीर धारण करने पड़ेंगे। इस लिये उनका नाश करना भी आवश्यक है। उनके नाश करने के तीन प्रकार के उपाय हैं:—१—कर्म द्वारा, २—ज्ञान द्वारा, ३—भक्ति द्वारा।

१—कर्म मार्ग:—कर्म मार्ग में दो मार्ग हैं। एक तो वैदिक कर्म-काड का अर्थात् वेदो में दिये हुए कर्मो का करना। यह मार्ग तो अब प्रायः लुप्त हो गया है। इसके करने मे भी कठिनाई है। यज्ञ की विधियो पर विवाद भी है। यह यज्ञ मुक्ति के लिये नहीं की जाती वरन् स्वर्ग प्राप्ति के लिये अथवा किसी सासारिक पदार्थ की प्राप्ति के लिये की जाती हैं। इस लिये सकाम होने से सस्कार अवश्य बनाती हैं। परन्तु वह शुभ सस्कार होते हैं। कर्म काड के मार्ग से मुक्ति मे इतनी सहायता तो अवश्य मिलती है कि शुभ सस्कार होने से धर्माचरण की प्रवृति अधिक हो जाती है और शनै. शनै. मनुष्य कर्म योग के योग्य हो जाता है।

कर्म योग:—कर्म का दूसरा मार्ग कर्मयोग अथवा निष्काम कर्म करना है। निष्काम कर्म से मन शुद्ध और शान्त होता है। इच्छा रहित होने के अभ्यास से मन की व्यग्रता दूर हो जाती है। जो मनुष्य इच्छा को जीत लेगा वह धर्म के विरुद्ध आचरण क्यो करेगा। यदि

वह धर्म के विरुद्ध आचरण करता है तो वह यथार्थ में कर्मयोगी नहीं है वरन् पाखंडी है। यदि वह यह कह कर समझावे कि "भाई तुम इन बातो को क्या समझो," तो समझना चाहिये कि वह स्वयं ही कर्म योग का रहस्य नहीं समझा। कर्मयोगी कभी अधर्म के कार्य नहीं करेगा। जब उसे स्वयं इच्छा नहीं है, जब उसका मन अशुद्ध नहीं है, फिर वह किसी कार्य को जिसमें स्वार्थ, या अपवित्रता, या अधर्म का लेश भी हो, कैसे कर सकता है? कभी कभी लोग इतिहास में से महान पुरुषों के आचरणों के उदाहरण दे देते हैं और उनके अनुसार आप भी कार्य करने का दावा करते हैं। परन्तु यदि उन उदाहरणों में कोई अधर्म है तो समझ लो कि वह उदाहरण ठीक नहीं है। उसमें कोई भूल है। अधर्म का तो कोई भी दृष्टान्त या उदाहरण अनुकरणीय नहीं है। कर्मयोग का परिणाम ही मन को शुद्ध करना, धार्मिक बनाना है। इससे मन के अपवित्र संस्कार नष्ट हो जाते हैं और जो शुभ संस्कार हैं उनमें से भी इच्छा का अंश निकल जाता है।

अथवा धर्म ग्रन्थों का पढना इत्यादि किये जाते हैं। इसी में सध्या की जाती है।

देवयज्ञ:—इसमे प्राकृतिक शक्तियों अथवा देवताओं को शुद्ध अथवा प्रसन्न करने के लिये सुगन्धित पदार्थों से हवन किया जाता है। इससे वायु शुद्ध होती है, रोग नष्ट होते हैं और ससार मे शान्ति फैलती है। देवताओ को प्रसन्न करने को उनके नाम से आहुति दी जाती है, इस लिये इसे देवयज्ञ कहते हैं।

पित्रयज्ञ:— देवयज्ञ के करने के पीछे पित्रों को जलदान करना पित्रयज्ञ कहलाता है। इसके पश्चात् किसी अतिथि को भोजन कराना अतिथि यज्ञ है। अतिथि वह है जो बिना सूचना किये भोजन करने के लिये आया हो। ऐसा प्राय वह ऋषी लोग किया करते थे जिनका जीवन समाज में ज्ञान के प्रचार मे व्यतीत होता था। जो कोई मनुष्य कार्यवश कोई यात्रा करता हुआ अकस्मात आ निकले वह भी अतिथि है। अतिथि को भोजन खिलाने के पश्चात् भूतयज्ञ अर्थात् ससार के सम्पूर्ण जीवधारियों के प्रति प्रेम से किसी जीव को खिलाने को कहते हैं। उस जीव को भी निरादर के साथ रोटी नहीं डालनी चाहिये।

अब भी प्राय: यह यज्ञ प्रत्येक हिन्दू घरों में प्रति दिन होते हैं। देव यज्ञ मे यदि हवन नहीं भी करते तो कम से कम चूल्हे की अग्नि मे ही शक्कर घी आदि डाल कर नियम पूरा करते हैं अथवा अग्नि के ऊपर बताशा, सुपारी, चावल, घी इत्यादि चढ़ाते हैं। इसी प्रकार भूत यज्ञ के स्थान पर गौ और कुत्ते को रोटी निकालते हैं।

२—ज्ञान मार्ग—दूसरा मार्ग ज्ञान का है। ज्ञान दो प्रकार का है।

परोक्ष और अपरोक्ष। परोक्ष ज्ञान तो शास्त्रों के पढ़ने से प्राप्त होता है। जैसे कोई कलकत्ते का ज्ञान करना चाहे तो किसी पुस्तक में उसका विवरण पढने से जो ज्ञान होगा उसको परोक्ष ज्ञान कहेंगे। परोक्ष ज्ञान से धर्म के सिद्धान्त मनुष्य की समझ मे आ जाते हैं। उससे उसे आगे क्या करना चाहिये इसका रास्ता साफ दिखाई पडता है। अपरोक्ष ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव को कहते हैं। जैसा कि किसी को कलकत्ता जाने पर हो। इस अपरोक्ष ज्ञान में मनुष्य को अपने जीवात्मा के स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है, या ईश्वर के दर्शन हो जाते हैं। परन्तु यह होता तब है कि जब जीवात्मा शुद्ध और सरल हो जाता है और उसका शुद्ध व सरल करना ही मुक्ति का उपाय है। इस सरलता के प्राप्त करने के लिये इच्छाओं को रोकना पडता है। इच्छा रहित शुद्ध स्वरूप हो जाना ही योग सिद्धि कहलाता है और उसका उपाय योग साधन कहलाता है। ऐसे योग साधन करने वाला मनुष्य भी धर्म तो करेगा परन्तु इच्छाए वश मे होने के कारण निष्काम कर्म करेगा। इस लिए उनसे नये संस्कार न बनेंगे। मन के स्थिर होने से पूर्व संचित संस्कार भी शनैः शनैः ढीले पडते जायगे और अन्त में नष्ट हो जावेंगे।

मार्ग लय योग का है। इसमें किसी शब्द के लगातार जपने से साधक को अपने मस्तिष्क में शब्द सुनाई पड़ते हैं। उन शब्दों को अनहद शब्द कहते हैं क्योंकि यह बिना किसी के बजाये हुए बजते हैं। ये शब्द दस प्रकार के हैं जिनमे मुख्य घंटे का शब्द, बांसुरी का शब्द, बादल की गर्ज का शब्द, वीणा का शब्द, इत्यादि है। इन शब्दों को सुनने से साधक का मन इन्हीं में लग जाता है और इससे मन स्थिर और शुद्ध होने लगता है। यहां तक कि मन इन्हीं शब्दों में लय हो जाता है और उस समय यह शब्द भी सुनाई नहीं पड़ते और समाधि लग जाती है। इसी लिये इसे लय योग कहते हैं। सन्तमत वाले सम्प्रदाय प्रायः इसी मार्ग से चलते हैं। इस साधन मे शब्द के सुनने के साथ साथ एक प्रकाश के भी दर्शन होते हैं जिसे ज्योति दर्शन कहते हैं। इस दर्शन मे भी साधक का मन लग कर शान्त हो जाता है।

जाप मरे अजपा मरे, अनहद हू मर जाय।
सुरत समानी शब्द मे, कालहु ताहि न खाय॥

हठयोग.—इसकी क्रिया आज कल प्रायः लुप्त हो चली है। इसमें शरीर को अनेक क्रियाओं से शुद्ध कर के प्राणायाम किया जाता है, अर्थात् श्वास को रोका जाता है। श्वास और मन का गहरा सम्बन्ध है। यदि मन शान्त होगा तो श्वास भी सहज मे चलेगा और मन चञ्चल होगा तो श्वास भी तीव्र गति से चलेगा। यदि श्वास तेज चलेगा तो मन भी चचल होगा और यदि श्वास सहज मे चलेगा तो मन भी शान्त होगा। इस लिये हठ योग मे मन को श्वास

द्वारा रोकते हैं। इस श्वास को रोकने के लिये भी पहले रीढ की हड्डी में जो स्नायु केन्द्र है उन पर क्रमशः ध्यान जमाते हैं। उनमें सब से पहला स्नायु केन्द्र मूलाधार चक्र गुदा के पास रीढ़ की हड्डी के सिरे पर है। इस चक्र से ही अंतड़ियो की क्रिया का संचालन होता है। इसी लिये इसको गणेश का स्थान माना गया है जिनका मुख हाथी की सूंड के समान है। शनै. शनै. ऊपर के स्नायु केन्द्रों पर ध्यान जमाया जाता है और जब मस्तिष्क में चोटी के नीचे ध्यान जम जाता है तब श्वास रुक जाती है और समाधि लग जाती है। इससे भी मन स्थिर व शान्त होता है और संचित कर्म नष्ट होते हैं। परन्तु यह क्रिया इतनी कठिन और खतरनाक है कि बिना किसी दक्ष गुरु के कराये रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यहाँ पर तो इसका सिद्धान्तिक स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म रूप में दिखाया गया है। इसे अष्टांग योग भी कहते हैं। इसके आठ दर्जे हैं। यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि। यम नियम नीचे लिखे जाते हैं। आसन किसी ऐसी बैठक को कहते हैं कि जो साधन करने में हितकर हो और जिससे साधक बहुत समय तक बैठा रह सके। आसन का सिद्ध करना परमावश्यक है

इतने प्रघाड हो जाने को कि ध्येय भी भूल जाय और अपनी सुधि भी न रहे, ऐसी अद्वैत अवस्था को समाधि कहते हैं।

यम व नियम :—चाहे किसी भी प्रकार का योग किया जाय यम और नियम का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। यथार्थ में यही धर्म के स्वरूप है। इनके पालन से मन धार्मिक व बंधा हुआ रहता है और उसकी स्वार्थपरता कम होती रहती है। यम पाँच हैं। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, आस्तेय और ब्रह्मचर्य। इन यमों को मन वचन कर्म तीनो से पालन करना चाहिये। न तो कोई ऐसी बात कहनी चाहिये और न कोई ऐसी बात सोचनी चाहिये और न कोई ऐसा कार्य करना चाहिये जो असत्य हो (सत्य), अथवा जिससे किसी को दुख हो (अहिंसा)। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि अहिंसा की रक्षा करने के लिये असत्य बोल देना चाहिये। यदि कोई मनुष्य स्वयं किसी को दुख नहीं देना चाहता परन्तु उसके सत्य बोलने से किसी को दुख पहुँच जाता है तो उस दुख का उत्तरदायी वह नहीं है। अपरिग्रह का अर्थ है किसी से कोई भेट न लेना। भेट लेने से मनुष्य के ऊपर कृतज्ञता का भार पड़ जाता है और उसकी स्वतन्त्रता में बाधा पड़ती है। बहुधा धर्मात्मा मनुष्य भी ऐसी कृतज्ञता के भार से दब कर अनुचित कार्य कर बैठते हैं। ऐसे बन्धन से मुक्त रहने के लिये धर्मी पुरुष भेट स्वीकार नहीं करता। आस्तेय चोरी न करने को [illegible]। चोरी करना एक प्रकार का असत्य कर्म है। पाँचवाँ नियम ब्रह्मचर्य का है। स्त्री साधक [illegible] तो पुरुष के सहवास की, व पुरुष [illegible] स्त्री के सहवास की इच्छा नहीं करनी चाहिये क्योंकि ऐसी

इच्छा साधन के पूर्ण होने में बाधा डालती है, मन को व्यग्र बनाती है, और मन को शान्त और शुद्ध नहीं रहने देती। दूसरे ब्रह्मचर्य पालन से शरीर बलवान व पुष्ट बना रहता है जिससे साधन बन पड़ता है। निर्बल शरीर से तप होना सम्भव नही है इसलिये सिद्धि प्राप्त करने के लिये शरीर को बलशाली बनाये रखना आवश्यक है। ब्रह्मचर्य केवल शरीर से ही पालन नहीं करना चाहिये वरन् मन वचन से भी पालन करना चाहिये। इनके अतिरिक्त क्षमा भी शान्ति के लिये परमावश्यक है। क्रोध करने से और बदला लेने के विचार से मन बडा दुखी और अशान्त रहता है। उस क्रोध का दूसरे पर कुछ प्रभाव पडे चाहे न पड़े परन्तु क्रोध करने वाले पर तो बुरा प्रभाव पड ही जाता है। उसका मन चिन्तित दुखी और व्यग्र रहता है। उसके मन में क्रोध के कुसंस्कार पैदा हो जाते हैं। इसलिये क्षमा से मन शान्त रहता है और लडाई आगे नहीं बढ़ती। परन्तु क्षमा का अर्थ कायरता नहीं है। जो डर कर क्षमा करता है वह यथार्थ मे क्षमा नहीं करता वरन् यह उसका डरपोक-पना है।

लोभ की दृष्टि न डाले। अपने लिये आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये पूरा प्रयत्न करे और फिर जो प्राप्त हो उससे सन्तोष करे। जो प्राप्त नहीं हुआ उसके लिये दुख न करे। तभी वह मनुष्य शान्त, स्थिर बुद्धि और प्रसन्नचित्त रह सकेगा। ऐसा मनुष्य शीलवान होगा शील का अर्थ सबसे सद्व्यवहार करना और क्रोध, अभिमान व ईर्ष्या आदि दुर्गुणों से रहित होना है। ऐसे स्वभाव से मन प्रसन्न व शुद्ध रहता है। शीलवाला मनुष्य दूसरों को कष्ट देने वाला नहीं होता। इससे समाज मे भी सुख व शान्ति फैलती है। तप से प्रयोजन अपने मन व इच्छाओ को वश मे रखते हुए परिश्रम करना है। मनुष्य को आलस्य नही करना चाहिए। आलस्य से कुछ सिद्ध नहीं होता वरन् उल्टी ऐसी आदत पड जाती है कि कोई श्रेष्ठ कार्य करने मे भी दुख होता है। फिर भला योग की कोई क्रिया नियम पूर्वक कैसे सध सकती है। यदि अपनी इच्छाओ को अपने वश मे न रक्खेगा तो किसी नियम का पालन न हो सकेगा। जिस समय उसको साधन के लिये बैठना है उस समय वह अन्य इच्छाओ से प्रेरित होकर साधन न करे तो सिद्धी कैसे प्राप्त होगी। इसलिये तप करना सिद्धी के लिये परमावश्यक है। शौच का अर्थ पवित्रता है। योग साधन के लिये मन और शरीर की पवित्रता दोनो ही आवश्यक हैं। शरीर के पवित्र रहने से मन भी हल्का और शुद्ध रहता है। यह उन सब को अनुभव होता है जो स्नान किया करते हैं। बिना स्नान किये हुये मन भी कुछ दूषित सा रहता है। इस लिये शौच भी आवश्यक है। ईश्वर प्रणिधान अपने सम्पूर्ण कार्यों को ईश्वर के अर्पण करने को कहते हैं। उसमें उनके फल की चिन्ता

छोडनी पडती है। फल की चिन्ता छोडने से मन शान्त व समाधि प्राप्त करने के योग्य बनता है तथा साधन निश्चिन्तता से बन पडता है।

२—भक्ति मार्ग:—भक्ति मार्ग में भक्त भगवान की शरण में जाता है। अपने सब कार्य उनको अर्पण करता है। भगवान के गुणों का स्मरण करके प्रेम से गद्गद हो जाता है और अपनी रक्षा करने के लिये, अपने पापों को क्षमा करने के लिये और मन को शुद्ध करने के लिये प्रार्थना करता है। परिणाम इसका वही है जो अन्य साधनों का है। भगवान के प्रेम में भरे रहने से मन इधर उधर सांसारिक प्रलोभनों में नहीं भटकता। इस प्रकार मन की चंचलता दूर होकर स्थिरता आती है। ईश्वर के ऊपर भरोसा करने से सन्तोष भी प्राप्त होता है। बिना ब्रह्मचर्य के भगवान की भक्ति भी अधूरी रहती है क्योंकि मन चंचल रह कर भगवद्भजन व प्रार्थना में नहीं रह सकता। और जो भगवान से प्रेम करना चाहे उनके लिये सत्य, अहिंसा, क्षमा, शील, इत्यादि का पालन तो करना ही पडता है। उसका मन जैसे जैसे कोमल और शुद्ध होता है वैसे वैसे यह गुण भी बढते हैं। फिर भगवान के नाम स्मरण में या मन्त्र के जप में ध्यान निरन्तर रूप से रखता है इससे

निराकार और साकार की भक्तिः—जो लोग अवतार को नहीं मानते वरन् निराकार ईश्वर को ही मानते हैं वे निराकार ईश्वर के दयालु, सर्व शक्तिमान, परम प्रकाशवान, सब का नियन्ता, सर्व व्यापक इत्यादि गुणों का ध्यान करके उसकी भक्ति व पूजा करते हैं और ओम् का जप करते हैं अथवा अन्य वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करते हैं। जो अवतारों को मानते हैं वे किसी विशेष अवतार की भक्ति व उसकी मूर्ति की पूजा करते हैं और उसके नाम का स्मरण तथा उसके गुणों का ध्यान करते हैं। भक्ति करने की अनेक क्रियाएँ हैं जिनमे निम्नलिखित मुख्य कही जा सकती है।

व्यक्तिगतः—१—पूजा, २—स्वाध्याय, ३—ईश्वरार्पण, ४—व्रत व उपासना, सामूहिक—५—कथाकीर्तन ६—श्रवण, ७—सत्संग, ८—मन्दिर पूजा।

१—पूजा विधिः—निराकार भगवान की पूजा सन्ध्या है जो प्रायः आर्यसमाजी किया करते है। एक पात्र में जल पास मे रखते है। प्रथम उसको बांये हाथ मे लेकर हाथ शुद्ध करते है फिर नेत्र, कर्ण, नासिका, सिर, बाहु, हृदय आदि स्थानों पर जल को लगाते है और शुद्धि के मन्त्र मन से अथवा जिह्वा से बोलते जाते है, फिर हथेली में जल लेकर आचमन करते है और आचमन के मन्त्र बोलते है। फिर इन्द्रियों और स्थान की शुद्धि के मन्त्र बोलते है। तत्पश्चात् भगवान से [illegible] दया, सुख, शान्ति व बल की प्रार्थना करते है और फिर हवन करते हैं। आम या ढाक की लकड़ियों को चौकोर वेदी या हवन कुण्ड मे रख कर उनको जलाते है और सुगन्धित चन्दन, घी, बूरा,

आदि वस्तुओं की सामग्री डालते है और हवन के मन्त्र बोलते जाते हैं। अन्त में भगवान से प्रार्थना करते हैं कि संसार भर, मित्र और शत्रु भी, पशु, पक्षी, वनस्पति, देवता और मनुष्य सब शान्ति प्राप्त करें। यदि किसी समय हवन की सुविधा न हो तो शेष कार्य ही करते हैं। कोई कोई इसमें साधारण प्रकार का प्राणायाम भी करते हैं तथा जिनकी इच्छा हो वह कुछ समय नाम स्मरण में भी व्यतीत करते हैं और भगवान के गुणों का चिन्तन करते हैं। ब्रह्मसमाजी लोग हवन भी नहीं करते और न वेद मन्त्रों को ही बोलते हैं। न उनकी सन्ध्या में शुद्धि आदि मन्त्रों की आवश्यकता है। वे केवल एक शुद्ध स्थान में बैठकर भगवान के गुणों का साधारण भाषा में ही चिन्तन करते हैं, प्रार्थना करते हैं और नाम स्मरण करते हैं। उस चिन्तन की भी कोई नियत शब्दावली नहीं है वरन् जैसा जिसका उस समय भाव हो वैसा ही चिन्तन करता है। आसन प्रायः कुश का या ऊन का या मृग की खाल का बिछाते हैं। भगवद् गीता में भगवान कृष्ण ने पहले कुश का आसन, उस पर मृग चर्म और उस पर रेशम का कपड़ा बिछाने की आज्ञा दी है।

किये जाते हैं जो किसी मनुष्य को सुख देने के लिये किये जाते हैं। प्रातःकाल उनको जगाया जाता है। इस समय या तो मूर्तियों को साधारणतया बिछे हुए पलग पर से उठा कर बिठाते हैं अथवा बाजे बजवा कर और प्रभाती गाकर (प्रात.काल का गीत) जगाते हैं। यदि शयन किसी पलग पर नही कराया होता तो केवल पट (मन्दिर के किवाड) खोलना ही जगाना है। फिर उनको स्नान कराया जाता है। इसके पीछे शृगार किया जाता है। फूल चढाये जाते हैं। फिर उनकी आरती की जाती है। एक पात्र में कपूर के दीपक जला कर उनके सम्मुख फिराये जाते हैं। साथ ही साथ घटी भी बजाई जाती है। जब तक आरती होती रहती है तब तक घटी बजती रहती है। तत्पश्चात् देवता की स्तुति की जाती है और फिर मीठे पदार्थों का भोग लगा कर देवता का प्रसाद भक्त प्राप्त करता है। तत्पश्चात् देवता को शयन कराया जाता है और पट बन्द कर दिये जाते हैं। यही क्रम प्रातःकाल व सन्ध्या काल दोनों समय किया जाता है। बहुत से भक्त अपने घर मे ही अपने इष्ट देव का छोटा सा मन्दिर रखते हैं और नियम से ठाकुर पूजा करके भोजन करते हैं। आरती करके स्तुति के पश्चात् भगवान का चिन्तन व उनके नाम का स्मरण भी करते हैं। जिनको घर मे मन्दिर रखने की सुविधा नहीं होती वे सार्वजनिक मन्दिरों मे जाकर ठाकुर पूजा मे सम्मिलित होते है, और भगवान की व्यक्तिगत पूजा के लिये वहीं बैठ कर उनका चिन्तन व नाम स्मरण करते हैं।

यह ठाकुर पूजा दो प्रकार की होती है। एक तो मूर्ति पूजा जो ऊपर वर्णन की है और दूसरी मानसिक पूजा। इसमें मनुष्य हाथों से

कुछ नहीं करता और न किसी मन्दिर व मूर्ति की आवश्यकता रखता है। वह मन में ही अपने इष्ट-देव के स्वरूप का ध्यान करता है। उनको प्रेम से प्रभाती गाकर जगाता है उनका शृंगार करता है, आरती करता है। स्तुति करता और भोग लगाता है। मानसिक पूजा का प्रभाव मूर्ति-पूजा से कहीं अधिक है। क्योंकि मूर्ति-पूजा में तो ध्यान बाहर की ओर भी बटता रहता है परन्तु मानसिक-पूजा में ध्यान बहुत गहरा हो जाता है और मन शीघ्र स्थिर व शान्त हो जाता है।

पूजा का समय:—भगवान का गाने के द्वारा गुणानुवाद अथवा स्वाध्याय अथवा पूजा व सन्ध्या का सबसे अच्छा समय प्रातःकाल सूर्य निकलने से पहले चार पाँच बजे के समय है। उस समय संसार भर में शान्ति होती है। परन्तु इतनी जल्दी ठाकुर पूजा नहीं की जा सकती। ठाकुर पूजा दिन निकलने पर ही की जाती है। प्रात काल की पूजा में एक विशेषता यह है कि वह दिन के आरम्भ में ही चित्त की वृत्ति को पवित्र भावना से लगा देती है जिससे मन दिन भर शुद्ध रह कर संसार के कार्य धर्मानुसार करने में समर्थ होता है।

वस्तुओं से प्रेम किया करता है कि जिन पर किसी कारण से मोहित हो जाय। इसलिये भगवान के गुणों का स्मरण उनसे प्रेम उत्पन्न करता है। स्वाध्याय वाणी से पढ कर अथवा चुपचाप पढ कर रुचि के अनुसार किया जाता है। यदि कोई पुस्तक न हो तो भी भगवान के गुणानुवाद करने के लिये मन्त्रो का गाना अथवा उनके चरित्र को वर्णन करने वाले पदों का गाना अथवा ऐसे निर्गुण भजन गाना जैसे कबीर साहब की साखी, बडा लाभ देता है।

३—ईश्वरार्पण:—यह एक भावना है जो निर्गुण व सगुण उपासक दोनों ही रखते हैं। इसका अर्थ यह है कि उपासक अपने जीवन को अपने भगवान के अर्पण कर देता है। भगवान की इच्छानुसार चलना ही अपना धर्म समझता है। अपने सारे प्रयत्न के फल को भगवान पर ही छोड कर उसकी चिन्ता नहीं करता। और इस प्रकार सन्तोष और शान्ति, तथा अपनी इच्छाओं पर अधिकार लाभ करता है। परन्तु ऐसी भावना का मनुष्य के मन मे सदैव रहना बडा कठिन है। सांसारिक आवश्यकताओं के कारण वह कुछ न कुछ चिन्ता किया ही करता है। फिर भी अभ्यास करने से यह भावना दृढ हो जाती है और फिर तो बडी शान्ति की देने वाली होती है।

४—व्रतउपासना:—इसको भी निराकार व साकार के उपासक अपने अपने इष्ट देव का ध्यान करते हुए कर सकते हैं। भेद इतना रहता है कि सगुण उपासक उन नियत दिनों पर व्रत करेगा जो उसके इष्ट देव के जीवन में विशेष दिन रहे हों, अथवा जिनका कोई ऐसे ही [illegible] के महत्व हो। जैसे यदि उन इष्ट देव ने किसी विशेष दिन को

व्रत के लिये अच्छा बताया हो। निर्गुण उपासक के लिये यह बन्धन नहीं है। वह किसी भी दिन को इसके लिये नियत कर सकता है। कभी कभी व्रत करने से शरीर के रोग भी दूर होते हैं। पाचन शक्ति ठीक होती है, अजीर्ण दूर होता है। दूसरे, शरीर के शुद्ध होने से मन भी शुद्ध होता है। व्रत के समय इन्द्रियां प्रबल नहीं होतीं और मन चञ्चल नहीं होता। उस समय उपासना करने से और भी अधिक फल होता है। व्रत का पारण करने के समय हलका भोजन ही करना चाहिये। इसीलिये फल या दूध का आहार किया जाता है, और उसकी भी मात्रा अधिक नहीं होनी चाहिये।

पर विराजमान कर उनके सामने उनके गुणों को गाकर अथवा नाम उच्चारण करके अथवा दोनों को मिला कर कीर्तन करते हैं। कभी कभी इससे पहले उनके सम्बन्ध मे कोई कथा एक प्रमुख मनुष्य वर्णन करता है, और कभी कथा कीर्तन से पृथक होती है। केवल कथा करने के लिये चित्र या मूर्ति विराजमान करना आवश्यक नहीं होता। कीर्तन भी बिना मूर्ति या चित्र के हो सकता है। परन्तु अधिकतर लोग चित्र या मूर्ति रख लेते हैं। कीर्तन मे प्रायः किसी न किसी प्रकार के बाजे का सग अवश्य होता है। यदि कोई बाजा न मिल सके तो हाथ से ताली बजाई जाती है। इससे भाव की वृद्धि होती है और मन की चचलता कम होती है। सुनने वालों मे भी भगवद् भक्ति का सचार होता है।

६—श्रवणः—कथा कीर्तन के साथ ही श्रवण भी सम्मिलित है। एक मनुष्य कथा करता है तो दूसरे सुनते हैं। कीर्तन के समय मनुष्य अपने उच्चारण को भी सुनता है। यह सब श्रवण उसके मन के भीतर सुने हुए शब्दों मे जो भाव हैं उनको पैदा करता है, और इस प्रकार भक्ति बढ़ती है। परन्तु इसके लिये यह आवश्यक है कि सुनने वाला मन को और सब विचारों से खींच ले। केवल मशीन के समान नाम बोलते जाने और इधर उधर देखते जाने से लाभ नहीं होता। ऐसा करने से मन उन शब्दों की ओर ध्यान नहीं देता। इसलिये वह भाव पैदा नहीं करते। परन्तु ध्यानयुक्त श्रवण से अनन्त लाभ होता है।

७—स्मरण—स्मरण मनुष्यों का भी हो सकता है और पुस्तकों का भी, [illegible] याद करते हैं जो ऊपर वर्णन किया जा चुका है।

सत्संग से प्रयोजन अच्छे भले, भगवत्भक्त मनुष्यों का संग करना और उनसे भगवत् चर्चा करना है। निर्गुण और सगुण उपासक दोनों अपने अपने प्रकार का सत्संग कर सकते हैं। जैसा संग होता है वैसी ही मनुष्य की वृत्ति बन जाती है, इसलिये सत्संग की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है। सत्संग से प्रयोजन भेषधारी सन्यासियों के संग से नहीं है। यदि कोई भेषधारी साधु भी पाप कर्म करने वाला हो तो उसका संग सत्संग नहीं है वरन् कुसंग है। सत्संग से प्रयोजन धर्मात्मा भगवत्भक्तों के संग से है। सत्संग मनुष्य को अच्छे रास्ते पर ले जाने वाला है। इसी में कभी योग साधन की क्रिया बताने वाला गुरु भी मिल जाता है। यदि गुरु भी न मिले, अथवा अपने को कुछ पूछना न हो तो भी सत्संग का समय भगवद् चर्चा में व्यतीत होता है। यह भी बड़ा लाभ है।

सगुण उपासक मन्दिर मे आरती के समय जब स्तुति होती है, तब सब मिल कर स्तुति को गाते हैं, और फिर या तो वहाँ भगवान के गुणानुवाद के लिये कोई भजन गाकर सुनाता है अथवा कोई कथा होती है व कीर्तन होता है। फिर सब लोग भगवान को भोग लगाये पदार्थ में से प्रसाद पाते हैं। सगुण उपासना में बाजो का होना अनिवार्य है। आरती की घंटी के अतिरिक्त कम से कम शख और घंटा अवश्य बजने चाहिये। कभी इनके अतिरिक्त नगाड़ा भी बजाया जाता है। पुजारी तो घंटी बजाता है और अन्य बाजो को दूसरे उपस्थित सज्जन बजाते हैं। सगुण उपासना की मन्दिर पूजा में स्तुति मे सम्मिलित होने अथवा शख, घंटा व नगाडा बजाने के अतिरिक्त सब कार्य पुजारी ही करता है।

मुक्ति की कामना क्यो की जाय:—इस प्रश्न का उत्तर यही दिया जाता है कि मनुष्य के जीवन में सुख व दुख इतने भरे हुए हैं कि इनसे छूटने का उपाय केवल मुक्ति ही है। मुक्ति में दुख दूर हो जाते हैं। जन्म नहीं लेना पडता और आत्मा अपने शुद्ध रूप में आनन्दित रहता है। इसके अतिरिक्त मुक्ति के लिये साधन करने में धर्माचरण भी करना पडता है। इससे समाज मे भी सुख व शान्ति फैलती है। धर्मात्मा मनुष्य दूसरों को दुख नहीं देता। जो भक्त लोग मुक्ति की इच्छा न करके अपने इष्टदेव के दर्शन ही करना चाहते हैं अथवा जो परोपकारी ससार के हित के लिये बार बार ससार में जन्म लेकर ससार की सेवा करना चाहते हैं वे भी भक्ति मार्ग या कर्म योग के पथिक हैं, और उनका अन्तिम परिणाम भी मुक्ति ही है।

४—सामाजिक व्यवस्था

चतुर्वर्णः—भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि भगवान ने समाज को गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार चार भागों में विभक्त किया है। उन चार भागों के नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र हैं। किसी भी समाज को अच्छी तरह से चलते रहने के लिये चार प्रकार की आवश्यकता है। समाज की बाहर के शत्रुओं से रक्षा करने के लिये और भीतर का प्रबन्ध ठीक करने के लिये रक्षकों की आवश्यकता है। समाज के प्रबन्ध की नीति निर्धारित करने के लिये तथा समाज में विद्या और ज्ञान वृद्धि करने के लिये विद्वानों की आवश्यकता है। समाज की जीविका के लिये धन उपार्जन करने के लिये कृषक और व्यापारी आदि की आवश्यकता है।

कुसग के प्रभाव से बुरे स्वभाव का हो जाय ऐसी अवस्था में यदि वह अपने ब्राह्मणोचित्त कर्म से गिर कर पाप करने लगे तो शास्त्रानुसार वह पतित हो जाता है और प्रायश्चित करके शुद्ध या पवित्र होता है। शास्त्र में भिन्न भिन्न पापों के लिये पृथक पृथक प्रायश्चित कहे हैं। जो विद्वान कि सदैव ज्ञान की वृद्धि में लगा रहे उसे धन उपार्जन करने का समय नहीं मिल सकता। अतएव उसकी जीविका का भार समाज के ऊपर है। ब्राह्मणों की जीविका राज्य और समाज के दान से होती है।

क्षत्रिय—या जो लोग समाज की रक्षा या प्रबन्ध का कार्य करें, उनमे तेज, बल, धैर्य, दृढता और चतुरता का होना आवश्यक है। उनको पक्षपात से सर्वथा रहित होना चाहिये। राज्य सत्ता इन्हीं के हाथ मे होनी चाहिये। जहाँ ब्राह्मण लोगों का कार्य राज्य की नीति निर्धारित करना है वहाँ उस नीति का पालन करना व कराना क्षत्रियों का धर्म है। यदि कोई ब्राह्मण भी निर्धारित नीति के विरुद्ध आचरण करे तो राजा को उसे भी दड देने का अधिकार है। क्षत्रिय सदैव सब अवस्थाओं मे निर्भय रहता है। वह शरण मे आने वाले की रक्षा करना धर्म समझता है और अपनी प्रतिज्ञा का सदैव पालन करता है। परन्तु प्रतिज्ञा धर्म विरुद्ध नहीं होनी चाहिये। धर्म विरुद्ध प्रतिज्ञा करना भी अधर्म है इसलिये उस अधर्म का पालन करना धर्म नहीं हो सकता। इनकी जीविका राज्य के कोष से होती है। समाज उस कोष मे कर देकर धन भरता है।

वैश्य. इस धन को, जिसकी आवश्यकता ब्राह्मणो को दान देने तथा क्षत्रियों को जीविका देने के लिये होती है, उपार्जन करने का कार्य

वैश्यों का है। वैश्यों का काम निर्विघ्न चलता रहे इसका प्रबन्ध तो क्षत्रिय करते हैं। और क्षत्रिय जीविका की चिन्ता से निश्चिन्त होकर अपने प्राणों की बाजी लगा कर समाज की रक्षा कर सकें, इसके लिये वैश्य लोग राज्य के लिये धन एकत्रित करते हैं। इसलिये वैश्यों को शान्त, सहनशील, शिल्प व व्यापार में चतुर, तथा मेहनती होना चाहिए।

शूद्रः—और जो लोग न तो विद्वान हैं और न शिल्प व व्यापार में चतुर हैं वे लोग समाज के व्यक्तियों की सेवा का कार्य करते हैं कि जिसमें विशेष बुद्धि की आवश्यकता न हो। इनको ही शूद्र कहते हैं। इस वर्ण व्यवस्था को जैन धर्म वाले भी स्वीकार करते हैं।

क्षत्रिय, वैश्य, कुलों में उत्पन्न मनुष्य अपने जन्मानुसार धर्मों का पालन नहीं करते बल्कि उनके गुणानुसार जो कार्य उनको रुचता है वही करते हैं। इसलिये उनके जन्म के अनुसार वर्ण उनके कर्मानुसार वर्णों से भिन्न होते हैं। परन्तु विवाह आदि वे लोग जन्मानुसार वर्ण में ही करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वर्ण के स्वभाव व गुण की रक्षा नहीं होती। उदाहरण के लिये लीजिये। यदि कोई क्षत्रिय जो जन्म से भी क्षत्रिय है और कर्म भी क्षत्रिय का करता है, किसी ऐसे क्षत्रिय कुल मे विवाह करे कि जहाँ वैश्य का कर्म किया जाता हो तो उसकी सन्तान मे भी वैश्य स्वभाव की मात्रा बढ़ जायगी। परन्तु शूद्र लोग अभी तक प्रायः सेवा का ही कार्य करते हैं।

इन्हीं कठिनाइयों के कारण आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी और सन्तमत वाले जन्मानुसार वर्ण को नहीं मानते और कर्मानुसार वर्ण को ही अधिक महत्व देते हैं।

चार आश्रमः—जिस प्रकार सारे समाज के कार्य को चार श्रेणियों मे बाँट दिया है उसी प्रकार व्यक्ति के जीवन को चार भागों में बाँट दिया गया है। यही चार आश्रम कहलाते हैं। मनुष्य के जीवन का उद्देश्य जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, मुक्ति प्राप्त करना है। परन्तु मुक्ति प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि समाज का प्रबन्ध ठीक बना रहे, तभी उसमें रहने वाले मनुष्यों को मुक्ति प्राप्त करने के लिये साधन करने की सुविधा होगी। यदि समाज में व्यवस्था न होगी तो न तो वह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है जिससे जीवन का उद्देश्य व उसकी प्राप्ति के उपाय समझ में आवेंगे और न

क्षत्रिय, वैश्य, कुलों में उत्पन्न मनुष्य अपने जन्मानुसार धर्मों का पालन नहीं करते बल्कि उनके गुणानुसार जो कार्य उनको रुचता है वही करते हैं। इसलिये उनके जन्म के अनुसार वर्ण उनके कर्मानुसार वर्णों से भिन्न होते हैं। परन्तु विवाह आदि वे लोग जन्मानुसार वर्ण में ही करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वर्ण के स्वभाव व गुण की रक्षा नहीं होती। उदाहरण के लिये लीजिये। यदि कोई क्षत्रिय जो जन्म से भी क्षत्रिय है और कर्म भी क्षत्रिय का करता है, किसी ऐसे क्षत्रिय कुल मे विवाह करे कि जहाँ वैश्य का कर्म किया जाता हो तो उसकी सन्तान मे भी वैश्य स्वभाव की मात्रा बढ़ जायगी। परन्तु शूद्र लोग अभी तक प्रायः सेवा का ही कार्य करते हैं।

इन्हीं कठिनाइयों के कारण आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी और सन्तमत वाले जन्मानुसार वर्ण को नहीं मानते और कर्मानुसार वर्ण को ही अधिक महत्व देते हैं।

चार आश्रमः—जिस प्रकार सारे समाज के कार्य को चार श्रेणियों मे बाँट दिया है उसी प्रकार व्यक्ति के जीवन को चार भागों में बाँट दिया गया है। यही चार आश्रम कहलाते हैं। मनुष्य के जीवन का उद्देश्य, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, मुक्ति प्राप्त करना है। परन्तु मुक्ति प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि समाज का प्रबन्ध ठीक बना रहे, तभी उसमें रहने वाले मनुष्यों को मुक्ति प्राप्त करने के लिये साधन करने की सुविधा होगी। यदि समाज में व्यवस्था न हो तो न तो वह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है जिससे जीवन का उद्देश्य व उसकी प्राप्ति के उपाय समझ मे आवेंगे और न

उस ज्ञान के अनुसार आचरण ही किया जा सकता है। जगलों में रहने वाले साधु व सन्यासी लोग बिना समाज की सुव्यवस्था के तप नहीं कर सकते। जब समाज में पापी बढ जाते थे तो राक्षस लोग जगलों में ऋषियों को भी खा जाते थे। अस्तु मनुष्य को अपने जीवन में समाज को सुदृढ रखते हुए ही मुक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। मनुष्य जीवन को चार भागों में इस प्रकार बाँटा गया है कि इन दोनों बातों को विचार में रखते हुये भी प्रत्येक मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सके और समाज की भी यथेष्ट सेवा कर सके। इन चार आश्रमों का विवरण नीचे दिया जाता है।

ब्रह्मचर्याश्रम.—विद्यार्थी जीवन को ही ब्रह्मचर्य आश्रम कहते हैं। यह यज्ञोपवीत सस्कार से प्रारम्भ होकर लगभग पच्चीस वर्ष की आयु तक रहता है। इस आश्रम के उद्देश्य दो हैं। एक तो यह है कि विद्यार्थी सम्पूर्ण आवश्यक शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर ले। शास्त्रों से यहाँ प्रयोजन केवल धर्म शास्त्रों ही से नहीं है वरन् शिल्प, राजनीति, अर्थ इत्यादिक सभी शास्त्रों से है। इस अध्ययन से विद्यार्थी अपने धर्म, जीवनोद्देश्य आदि को ही नहीं जानता वरन् ससार यात्रा को सफलता पूर्वक तय करने के साधन भी सीख लेता है। इस समय युवक का सारा समय परिश्रम व विचार केवल विद्या प्राप्ति में लगते हैं इसलिये इस आश्रम में विवाह वन्धन नहीं किया जा सकता। इस समय उसका धर्म गुरू की सेवा करना और विद्या प्राप्त करना ही है। ब्रह्मचारी अभिमान रहित होना चाहिये। वह समाज से दान लेकर अथवा भिक्षा करके अपने गुरू को अर्पण करता है और गुरू के दिए हुये पदार्थों से अपना

निर्वाह करता है। गुरू की तन और मन से सेवा करके उसके प्रेम और आदर को प्राप्त करता है। ऐसे सेवा भाव से परिपूर्ण ब्रह्मचारी को गुरू सम्पूर्ण विद्या सिखाता है। दूसरा उद्देश्य यह है कि अपने शरीर व मन को वश मे रखने का अभ्यास किया जाय। जीवन यात्रा के लिये केवल ज्ञान का प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त नहीं है वरन् शरीर को भी ऐसा बनाना चाहिये कि वह सासारिक कष्टों से घबरा न जाय। और मन भी ऐसा वश में रहे कि सहज में ही किसी लोभ में न पड जाय। वरन् सदैव धर्म पर दृढ रहे, इसीलिये ब्रह्मचारी का जीवन बडा कठोर होता है। ब्रह्मचारी पृथ्वी या तख्ते पर सोता है। मिर्च, गर्म मसाला, आदि नहीं खाता। न चाट व मिठाई आदि स्वादिष्ट वस्तुए ही खाता है। जब कभी गुरू के आश्रम से बाहर जाता है तो नीचे को निगाह किये हुए चलता है। इधर उधर को ताकते हुए चलना विद्यार्थी अथवा ब्रह्मचारी के लिये अधर्म है। ब्रह्मचारी विद्यार्थी स्त्रियों का सग या उनसे हँसी नहीं करता। ब्रह्मचारी आज कल जैसे उपन्यास या नाटक नहीं पढता है। ऐसी कठोर तपस्या मे से निकला हुआ ब्रह्मचारी कुन्दन के समान चमकता है। और परम शक्तिशाली व शास्त्रों के ज्ञान मे पंडित होता है। मुक्ति प्राप्त करने और सामाजिक जीवन की सफलता के लिये आवश्यक ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्मचारी ससार में अवतीर्ण होता है।

गृहस्थाश्रम—ब्रह्मचारी विवाह करके गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है। गृहस्थजीवन के भी दो उद्देश्य हैं। एक उद्देश्य तो समाज की सेवा है और दूसरा अपने मन को वश मे रखने का अभ्यास करना

है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति प्राप्त करना है। मुक्ति प्राप्त करने के लिये कठिन तपस्या करनी पड़ती है और मन व शरीर को ऐसा बनाना पडता है कि जिससे वह किसी कठिनाई से भी दुख न पावे। शरीर के दुख सहन करने का अभ्यास ब्रह्मचर्याश्रम में किया था। गृहस्थ जीवन में ससार के अनेक प्रकार के भले बुरे पुरुषों से काम पडता है। अनेक प्रकार की अवस्थाओं व परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। उस समय मन के क्रोध को, लोभ को, ममता और मोह को, अथवा अपने सुख की इच्छाओं को, रोक कर नियत धर्म का पालन करना बड़ा कठिन हो जाता है। ऐसी कठिनाई में भी जिसने मन को वश में कर लिया वह अगले आश्रम में मुक्ति के साधन करने के योग्य हो जाता है। यह तो गृहस्थी के व्यक्तित्व की उन्नति हुई। इसके साथ साथ गृहस्थो समाज सेवा के धर्म का पालन करता है। उसका धर्म है कि समाज को उन्नति करने के लिये और उसको सुदृढ बनाने के लिये प्रयत्न करे। जो उसके आश्रित हों उनका पालन करे। राज्य के प्रति जो उसका कर्तव्य है उसका भी उसे पालन करना चाहिये। तथा अपने वर्ण धर्म का पालन करते हुए धन कमावे और उम धन को अच्छे कार्यों में लगावे। अपना और अपने परिवार का पालन करते हुए परोपकार करने को परम धर्म समझे। समाज के जो निर्धन व दीन व्यक्ति हैं उनकी सहायता करे, और जो श्रेष्ठ व पूज्य लोग हैं उनका पूजन व आदर सत्कार करे। पच यज्ञ, सस्कार आदि जो धर्मकार्य हैं उन सब का पालन करे और उनका प्रचार करे। दूसरों से व्यवहार करने में सत्य, दया, क्षमा और शील का पालन करे। और आप सदैव

सन्तोषी परन्तु आलस्य रहित पुरुषार्थी और सदाचारी बना रहे। यदि कोई अपने साथ अत्याचार करे तो उस अत्याचार को दूर करने का प्रयत्न करे। ऐसा सदाचारी वीर व्रतधारी मन और शरीर को वश में रखने वाला गृहस्थी पच्चीस वर्ष तक गृहस्थ जीवन में रह कर वाणप्रस्थ आश्रम का अधिकारी होता है।

वाणप्रस्थ आश्रम—वाणप्रस्थ आश्रम उसको कहते हैं कि जिसमे गृहस्थ धर्म का पूरा पूरा पालन करने के पीछे वन प्रदेश के एकान्त मे मुक्ति का साधन करने के लिये प्रस्थान अथवा प्रवेश होता है। गृहस्थी भी उपासना, पचयज्ञ आदि का पालन करता था। मन व शरीर को वश मे करना भी मुक्ति के साधन की सीढिया हैं। परन्तु अब वह मनुष्य और भी कठोर तपस्या करता है। बन मे रहने के दुखों को झेलता है। बन के एकान्त वास में अनेक जगली पशुओं के भय को भी दूर करता है। इस प्रकार जब सब प्रकार के कष्टों में भी उसका मन निर्भय और निश्चल रहता है तब वह पक्का हो जाता है। ऐसी परिपक्व अवस्था मे जब उसका मन योग साधन मे लगता है, तो उसका साधन शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है। उसे ईश्वर के दर्शन हो जाते हैं, और अपनी आत्मा का स्वरूप मालूम हो जाता है। अपनी आत्मा व ईश्वर के दर्शन हो जाने पर ऐसे योगी का मन पूर्णतया निश्चल हो जाता है। अब उसको कोई स्वार्थ की इच्छा नहीं रहती। उसे अब अपने लिये और कुछ करना नहीं रह जाता। इसलिये ऐसा सिद्ध योगी सन्यास आश्रम मे प्रवेश करता है।

सन्यास आश्रम—अब उसका धर्म यह रह जाता है कि समाज

के धर्म की रक्षा करे। गृहस्थी लोगों को धर्म का उपदेश करे। राजाओं को राजनीति का उपदेश करे। ऐसा सन्यासी सब के लिये मान देने और आदर करने योग्य है। ऐसे सन्यासी की आज्ञा सब को माननीय है क्योंकि वह ऐसी भट्टी में से निकल चुका है कि जिसमें स्वार्थ तो पूर्णतया जल चुकता है। इसलिये अब उसकी आज्ञा दूसरे के हितार्थ ही होगी। परन्तु ऐसे सन्यासी को भी यह अधिकार नहीं है कि वह कोई असत्य, पाप, अधर्म, अत्याचार, बढाने वाली आज्ञा दे। जिस प्रकार अन्याय करते हुए राजा को सन्यासी रोक सकता है उसी प्रकार यदि सन्यासी सदाचार व सत्य के विरुद्ध कोई कार्य करे तो राजा का धर्म है कि उसको रोके। और यदि वह न माने तो उसका शासन करे। सच्चे सन्यासी से कोई सदाचार विरुद्ध अधर्म कार्य बन ही नहीं सकता, क्योंकि वह स्वार्थ को तो पहले ही भस्म कर चुका है फिर पाप किस लालच से करेगा। भिन्न भिन्न वस्त्रों का पहनना या भेष बनाना सम्प्रदायों के अनुसार बन जाता है। प्रायः सन्यासी गेरुए रंग के वस्त्र पहनते हैं और शिर व मुख के बाल मुँडवा लेते हैं। वाणप्रस्थी प्रायः लम्बे लम्बे केश रखते हैं। सन्यास धर्म में प्रवेश करने पर जनेऊ रखना छोड़ दिया जाता है।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य आश्रम तो तैयारी का समय है गृहस्थाश्रम समाज सेवा व मन को योग साधन करने के लिये तैयार करने का समय है, वाणप्रस्थ में साधन की सफलता प्राप्त की जाती है और सन्यास आश्रम में फिर समाज सेवा ही धर्म रह जाता है। इस प्रकार इन चारों आश्रमों में व्यक्ति के मुक्त करने और साथ ही समाज को सुव्यवस्थित

और सुदृढ रखने, दोनों ही का प्रबन्ध है। परन्तु आज कल यह आश्रम-व्यवस्था लुप्त हो गई है। अब लोग चाहे जिस अवस्था मे ही सन्यासी हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि उनके मन में कच्चाई रह जाती है और विरले ही सन्यास आश्रम के पवित्र आदर्श को पहुँच पाते हैं।

इस्लाम धर्म

१—इस्लाम के मुख्य सिद्धान्त

मुसलमान का नीचे लिखी बातों पर पूरा यकीन होता है :—

१—.खुदा एक है। २—हजरत मुहम्मद साहब उसके रसूल हैं। ३—खुदा दुनियाँ का इन्तज़ाम फ़िरिश्तों के जरिये करते हैं। ४—हजरत मुहम्मद साहब से पहले भी पैग़म्बर हुए हैं जिन्होंने खुदाई पैग़ाम की किताब इन्जील (या बाइबिल) लोगों को दी, लेकिन हज़रत साहब सब से अन्तिम व सब से बड़े रसूल हैं। ५—कयामत यानी प्रलय के दिन सब लोगों की रूहें कब्रों से निकलेंगी और खुदा उनका इन्साफ करेंगे। ६—दुनियाँ में कोई काम .खुदा की मर्जी के बिना नहीं होता और जो कुछ होता है उसका खुदा को पहले से ही इल्म रहता है।

मुसलमान के लिये पाँच काम करना फर्ज़ है। १—कलमा पढ़ना। कलमा यह है "बिसमिल्लाअलरहमान उल रहीम मुहम्मद रसूलउल्लाह" (सिवाय परम कृपालु ख़ुदा के और कोई चीज़ पूजने के योग्य नहीं है और हज़रत मुहम्मद ख़ुदा के रसूल हैं)। २—दिन भर में पाँच बार नमाज पढ़ना। ३—रमज़ान के दिनों में रोज़ा या व्रत रखना। ४—ज़कात देना। ५—हज्ज यानी मक्का शरीफ की यात्रा करना।

१—खुदाः—.खुदा दुनिया का मालिक है। बस उसी की पूजा चाहिये। वह कभी पैदा नहीं हुआ। वह कभी मर नहीं सकता। उसका

न क़द है न शक्ल है और न रंग रूप ही है। वह हमेशा एक सा रहता है। वही दुनिया को पैदा करने वाला है। वह क़ादिर मुतलक़ है हाज़िर नाज़िर है। पेड़ों मे कितनी पत्तिया हैं यह भी उसको मालूम है। बालू के ज़र्रों की गिनती भी उसको मालूम है। पिछली और आगे की सब बातें उसको मालूम हैं। किसी इन्सान के मन मे क्या आता है, यह भी वह जानता है। कोई काम बिना उसकी मर्ज़ी के नहीं होता। ख़ुदा सब की बाते सुनता है। सब देखता है उससे कुछ भी छिपा नहीं है। वह हर जगह मौजूद है। वह अपने प्यारे पैग़म्बरो से बातें भी करता है। इन्सान ख़ुदा की मर्ज़ी को समझ नहीं सकता लेकिन फिर भी उसको सब कुछ ख़ुदा की मर्जी समझ कर क़नाअत करनी चाहिये। ख़ुदा का जलवा ऐसा अजीब है कि इन्सान की अक़्ल के बाहर है। उसके कान नहीं हैं लेकिन वह सुनता है। उसके आँखे नहीं हैं लेकिन वह देखता है। यह वह कैसे करता है यह इन्सान नहीं समझ सकता। इसलिये इस झगडे में पडना भी नहीं चाहिये। बस यह समझ लेना चाहिये कि दुनिया का मालिक ख़ुदा मुनसिफ भी है और रहीम भी है। वही एक पूजा करने के लायक़ है।

शिया लोगों का यक़ीन है कि ख़ुदा के गुण व रूप भी अक़्ल से जाने जा सकते हैं। दुनिया मे इन्सान की जिन्दगी की तरक्की हुई है और उसी के मुआफ़िक़ ख़ुदा इन्सानों को राह दिखाने के लिये क़ानून बनाता रहा है, जो बहुत से मज़हबों की शक्ल में ज़ाहिर हुए हैं। शियाओं के ख़्याल मे इन्सान ही अपने अच्छे बुरे कामों का जवाबदार है और उन्हीं के मुआफ़िक़ उसको सज़ा या इनाम मिलता है।

लेकिन ख़ुदा कभी दिखाई नहीं दे सकता और न उसके कोई जिस्म ही है।

२—फ़िरिश्ते—न खाते हैं न पीते हैं। इनमें औरत मर्द का भेद नहीं रहता। चार फ़िरिश्ते खास हैं:—१—जिबराईल, यह खुदा के पैग़ाम ले जाने का काम करता है। पैग़म्बरों के पास पैग़ाम ले जाने का काम इसी के सुपुर्द है। २—इजराईल, दूसरा फ़िरिश्ता है। इसका काम इन्सानों के मरने पर उनकी रूहों को क़यामत के दिन तक हिफाज़त से रखना है। ३—इसराफील—तीसरा फ़िरिश्ता है। इसके पास वह तुरही है जिसको क़यामत के दिन वह ख़ुदा का हुकुम पाकर बजावेगा। यह तुरही हमेशा उसके मुह से लगी रहती है और वह उसको बजाने के हुकुम की राह देखता रहता है। ४—मिकाइल:—यह चौथा फ़िरिश्ता है। इसका काम दुनिया में ज़रूरी चीज़ों का इन्तज़ाम है। जैसे वर्षा करना, नाज उपजाना इत्यादि।

जब ख़ुदा ने दुनिया बनाई तो उसमें रहने के लिये आदम को बनाया। उस वक़्त आदम बड़े पाक व साफ़ थे। ख़ुदा ने सब फ़िरिश्तों को कहा कि आदम को सिजदा करो। सब ने किया लेकिन "इबलीस" नाम के फ़िरिश्ते ने नहीं किया। उसकी सज़ा में इबलीस को बहिश्त से निकाल दिया गया और वही फिर शैतान के नाम से मशहूर हुआ। इसी बेइज्ज़ती का बदला लेने के लिये शैतान खुदा के बनाये हुए इन्सानों को बहका कर पाप कराने की कोशिश करता है और लोग उसके बहकाये में आकर पाप करते भी हैं। लेकिन जो मुसलमान होकर खुदा से पनाह मागते हैं उनको ख़ुदा क़ायामत के दिन माफ

कर देंगे। हर एक मनुष्य के साथ दो फिरिश्ते रहते हैं। एक सीधे हाथ को और एक बाये हाथ को रहता है। वे उस मनुष्य के भले बुरे काम लिखते रहते हैं। जब रात को दिन के रहने वाले फिरिश्ते चले जाते हैं तो दूसरे दो फिरिश्ते उनकी जगह पर आ जाते हैं। इसी तरह जब कोई मरता है तो कब्र में 'मुनकिर' और 'नक़ीर' नाम के दो फिरिश्ते उसके पास में आते हैं। वे उससे पूछते हैं कि उसको इस्लाम और हजरत मुहम्मद रसूलअल्लाह मे यक़ीन है कि नहीं।

जिन्न:—फिरिश्तों के सिवाय जिन्न और होते हैं। दुनिया के सिरे पर एक पहाड है जिसका नाम कोहक़ाफ है। यह उस पहाड़ में रहते हैं। इनका जिस्म आग का बना होता है। इनमे कुछ इस्लाम के मानने वाले हैं और कुछ इस्लाम को नहीं मानते। मरने के पीछे इनकी भी इन्सानो की सी हालत होती है।

३—किताब और पैगम्बर:—मुसलमान यह विश्वास करता है कि दूसरी किताबे जो डेविड, सेठ, इब्राहीम, ईसा, मूसा, पैग़म्बरो को मिलीं वह भी खुदा की ओर से भेजी गई थी। मुसलमान को उन पैग़म्बरों का भी आदर करना चाहिये परन्तु यह किताबें अब वैसी नहीं रहीं जैसी कि खुदा के पास से आने के वक्त थी। इसलिये क़ुरान शरीफ का नज़ूल हुआ। सब से पहले पैगम्बर हजरत आदम थे। इन्हीं से इन्सान की नसल चली। इनके और आखिरी पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद रसूलअल्लाह के बीच मे लाखो पैगम्बर हुए हैं। परन्तु उनमे से कुछ खास हैं जैसे हजरत आदम, हज़रत नूह, हजरत इब्राहीम, हज़रत मूसा हजरत ईसा, हजरत मुहम्मद। हजरत ईसा को रूह-अल्लाह

(यानी अल्लाह की आत्मा) और हज़रत मुहम्मद को रसूल अल्लाह कहते हैं। हज़रत मुहम्मद सब में अफ़ज़ल हैं। किताब के सब पैग़म्बरों में यह इज्जत हज़रत मुहम्मद को ही हासिल थी कि एक रात्रि को वे ग़ैबी घोड़े पर चढ कर बहिश्त को गये और खुदा का दीदार हासिल किया।

४—क़यामत का दिनः—जब दुनिया में गुनाह बहुत बढ़ जायगा तब ख़ुदा के हुकुम से इसराफील फिरिश्ता तुरही को बजावेगा। उसके बजाते ही दुनिया खतम हो जायगी। फिर जब वह दुबारा तुरही बजायगा तब सब की रूहें फिर जी उठेंगी चाहे वे कभी भी मरे हों। फिर सब लोगों को उनके कामों की किताबें दी जायगी जो उनकी ज़िन्दगी में फ़िरिश्तों ने लिखी थीं। फिर लोगों की किताबे तोली जायगी। जिनकी अच्छे कार्यों की किताबे भारी होंगी वे बहिश्त में चले जायगे। और जिनकी पापों की किताबे भारी होंगी वे दोज़ख़ में चले जायगे। किताबें तुलने के पीछे सब लोग "मिरात" नाम के पुल पर होकर निकलेंगे। यह पुल तलवार की धार की तरह पतला है। अच्छे लोग उस पर होकर बहिश्त को चले जायगे और गुनहगार लोग उस पर से दोजख़ की आग में गिर पडेंगे। दूसरे धर्म वालों में भी जो धर्मात्मा हैं और एक खुदा को मानते हैं वे भी बहिश्त में चले जायगे। जो मुसलमान अपने गुनाहों की वजह से दोज़ख में गिरेंगे वे वहां पाक होकर हज़रत मुहम्मद साहब की सिफ़ारिश करने पर बहिश्त में जाने दिये जायगे। लेकिन बहुत से मुसलमानों का यक़ीन है कि जिन्होंने गुनाह कबीरा यानी बड़े पाप किये होंगे वे नर्क से नहीं निकाले जायगे।

५—गुनाहः—गुनाह दो तरह के हैं। १—गुनाह कबीरा यानी बडे पाप—जैसे कत्ल करना, ख़ुदा का व माता पिता का हुक्म न मानना, जनाकारी करना, शराब पीना, सूद खाना, यतीमों के माल को खाना, शुक्रवार की नमाज़ न पढना, रमजान का रोजा न रखना, ज़ुल्म करना, चूगली करना झूठ बोलना व बेईमानी करना, झूठी गवाही देना, सच्ची गवाही न देना, झूठी कसम खाना, ज़ालिमों की तारीफ करना, झूठा फैसला देना, जादू करना, जुआ खेलना, अपने इख़लाक की तारीफ करना, किसी के मरने पर छाती पीटना, नाचना, गाना, यह सब बड़े गुनाह हैं। यह जभी माफ होते हैं जब इन्सान इनसे पछता कर तोबा यानी फिर न करने की प्रतिज्ञा करता है, जिससे उसके भले कामों का बोझ बढ जाता है।

२—इनके अलावा सब गुनाह सगीरा या छोटे पाप हैं। ये वे पाप हैं जो सहज में ही क्षमा हो जाते हैं।

२—मुसलमान के आवश्यक धर्म

मुसलमान के जरूरी काम पाँच तरह के हैं। १—फर्ज (या धर्म) २—वाजिब (या उचित) ३—सुन्नत अथवा फितरत, (या अनुकरणीय) ४—मुस्तहब, ५—मुबाह या अच्छे। मुसलमान के लिये तीन तरह के काम मना हैं। १—हराम यानी जो काम बिलकुल मना है। जो गुनाह तो नहीं है परन्तु जिनके करने से नफ़रत होता है

और जिनको अच्छे लोग नहीं करते। २—मकरूह यानी बुरे कर्म। ३—मुफसिद या झगड़ा फैलाने वाले।

फर्ज़—फर्ज़ पाँच हैं—१—तशह्हुद, २—नमाज, ३—रोजा, ४—ज़कात, ५—हज। इनको अर्कान-ऐ-दीन यानी धर्म के खम्भे कहते हैं। इनका करना जरूरी है।

तशह्हुदः—इस्लाम का जो मूल मन्त्र है जिसे कलमा कहते हैं, उसके पढने को तशह्हुद कहते हैं। जब कोई दूसरे धर्म वाला मुसलमान होता है तो उसके लिये भी इस कलमे का पढना ज़रूरी है। यह कलमा अरबी भाषा में है, जिसमें कि सारा क़ुरान शरीफ लिखा गया है। इसमें इस्लाम के दो बडे असूल दिये हुए हैं। एक तो ख़ुदा का एक होना, और दूसरा हज़रत मुहम्मद में यक़ीन। बाक़ी सब बातें इन्हीं दोनों असूलों की बुनियाद पर खडी हुई है।

नमाज़ः—नमाज पढने से पहले "तहारत" अथवा सफाई करना ज़रूरी है। बिना पाक हुए नमाज़ नहीं पढ़ी जा सकती। पाक होने के तरीक़े तीन तरह के हैं। (अ) वज़ू, (ब) गुस्ल, (स) तयम्मुम।

अ—वज़ू—इसमें चार काम हैं। एक सिर से ठोडी तक और कानों तक मुँह धोना। दूसरा हाथों को कोहनी तक धोना। तीसरा भीगे हुए हाथ से सिर पोंछ लेना। चौथा टख़नों तक पैरों को भी धोना। शिया लोग पैरों को भी भीगे हाथों से केवल पोंछना ही काफ़ी समझते हैं।

लेकिन वज़ू करने से पहले वज़ू की "नीयत" यानी ख़्याल करना चाहिये कि मैं नमाज पढ़ने के लिये वज़ू करता हूँ, और अल्लाह का

नाम लेकर वज़ू शुरू करना चाहिये। हाथ धोने में हाथ को पानी में नहीं डालना चाहिये बल्कि पानी को हाथ पर डालना चाहिये। हर एक काम तीन बार करना चाहिये। इस तरह हर एक हाथ को तीन बार धोना चाहिये। तीन बार कुल्ला करके मुँह भी साफ करना चाहिए। दाँत और नथने भी साफ करने चाहिये। दाढी को भी हाथ से साफ कर लेना चाहिये। कानों को भी भीगी अगुलियो से साफ करना चाहिये।

ब—गुस्लः—अगर किसी वजह से जिस्म नापाक होगया हो तो नहाना चाहिये। नहाने से पहले कपड़े बदल कर वज़ू कर ले और फिर यह नीयत करे कि मैं पाक होने के लिये गुस्ल करता हूँ। गुस्ल करने मे पहले दाहिने कन्धे पर, फिर बाये कन्धे पर और फिर सिर पर तीन बार पानी डाले। इतना पानी डाले कि सारा जिस्म धुल जाय।

स—तयम्मुम—अगर पानी न मिल सकता हो, या नमाज पढने वाला बीमार हो और इसलिये पानी से सर्दी हो जाने का डर हो या पानी लाने मे किसी शत्रु या जानवर का डर हो, या नमाजी को देर होगई हो तो वह वज़ू के बदले तयम्मुम कर सकता है। तयम्मुम मे पहले नीयत करके फिर रेती से हाथ और मुँह को मल कर साफ कर लेना चाहिये। हाथो को कोहनियों तक मलना चाहिये। इसी का नाम तयम्मुम है।

सफ़ाई हो जाने के पीछे नमाज पढी जाती है। नमाज चाहे घर पर पढी जाय चाहे मसजिद मे। मसजिद मे पढना श्रेष्ठ समझा जाता है। खास कर शुक्रवार की दोपहर की नमाज़ तो ज़रूर मसजिद में पढी जानी चाहिये। हर एक मसजिद मे एक अज़ान देने वाला रहता है। जब

नमाज़ का वक्त आ जाता है तो वह अजान देने वाला अजान देकर मुसलमानों को नमाज़ पढने के लिये बुलाता है। अजान में वह "अल्लाह-उ-अकबर" कह कर कहता है कि "सिवाय ख़ुदा के और कोई पूजने के लायक नहीं है और हजरत मुहम्मद उसके रसूल हैं. और नमाज़ पढो। सोने से नमाज अच्छी है।" इस प्रकार वह मुसलमानों को याद दिलाता है कि नमाज़ का समय हो गया है।

जब सब मुसलमान वज़ू करके नमाज के लिये खडे होते हैं तो एक मुसलमान सब के आगे खड़ा होता है। यही उस वक्त के लिये इमाम होता है और नमाज़ शुरू करता है। सब लोग मक्का शरीफ की ओर मुँह करके खड़े होते हैं।

नीयत:—पहले नमाज़ी खड़ा होकर अपनी नीयत करता है कि इस वक्त में सच्चे दिल से दो, या जितनी उसे पढ़नी हो, रकत की नमाज़ पढूँगा।

तकबीर:—फिर दोनों हाथों के अंगूठों से कानों के सिरों को छूते हुए हथेली सामने रखकर नमाजी "अल्लाह-उ-अकबर" कहता है।

क़याम:—फिर नमाजी दोनों हाथों को सामने बाँध कर दाहिने हाथ की हथेली बाये हाथ की पीठ पर रक्खे और दोनों हाथ नाक से नीचे रखकर खडा होकर सामने को नीचे की ओर देखता है और इसी हालत में सना (ऐ ख़ुदा तू पवित्र है, तेरी जय हो, तेरा नाम बड़ा है, तेरे सिवाय और कोई देवता नहीं है) कहता है।

फिर तअव्वुज़ —(मेरी शैतान से रक्षा कर) और तस्मिया (ख़ुदा रहमान उल्ज रहीम और कृपालु है) कहता है। इसके पीछे

फातिहा पढा जाता है जिसमें क़ुरान शरीफ के प्रथम अध्याय की आयतें पढी जाती हैं। और उसके पीछे इच्छानुसार कुछ और आयते पढ़ी जाती हैं फिर दोनों हाथों को घुटनों पर रख कर और ज़रा झुक कर "अल्लाह-उ-अकबर" कहा जाता है। फिर खड़े होकर तसमिया कहना चाहिये।

तकबीर-ए-सिजदा:—फिर अल्लाह-उ-अकबर कहते हुए दोनो घुटनों को और दोनों हाथो को नीचे टेक कर सिजदा करना अर्थात् माथा टेकना चाहिये। उस वक्त हाथों के अगूठे कानों के सिरो को छूते रहते हैं। फिर नामजी अल्लाह-उ अकबर कहता हुआ घुटनों पर बैठ जाता है। हाथ भी घुटनों पर रख लेता है। फिर पहले की तरह दुबारा सिजदा करता है। फिर अल्लाह-उ-अकबर कहता हुआ उठ खड़ा होता है। इस प्रकार एक रकत पूरी होती है। दूसरी रकत फिर फातिहा से शुरू होती है। इसमे पहली रकत में पढी हुई आयतों के सिवाय कोई आयते पढी जाती हैं। इसके पीछे "अत्तहियात" (या शान्ति पाठ) पढा जाता है:—"ऐ खुदा तू ही एक तारीफ के क़ाबिल है। रसूल अल्लाह को आराम दे। हमको और ख़ुदा के सच्चे बन्दों को आराम दे।" शिया लोगों की नमाज़ यहाँ ख़तम हो जाती है। लेकिन सुन्नी लोग इसके पीछे तशह्हुद पढते हैं। फिर दरूद कहते हैं जिसमें रसूलअल्लाह और उनकी सन्तान के लिये ख़ुदा की दुआ की जाती है। फिर अपने लिये सुख समाप्ति की प्रार्थना होती है। आख़िर में दाहिनी और बाईं ओर मुँह फेर कर सलाम की जाती है कि 'ख़ुदा तुम पर सलाम करे व आराम दे।" सब से पीछे खड़े होकर हाथों

को सामने करके .खुदा से दुआ की जाती है और फिर उन हाथों को मुख पर फेर लेते हैं। बस नमाज़ ख़तम हुई।

नमाज़ के वक्त पाँच हैं:— १—सूरज निकलने से पहले, यह फजर यानी प्रातःकाल की नमाज कहलाती है। २—नमाज़-ए-जुहर, दिन के एक बजे से तीन बजे तक। ३—नमाज-ए-असर तीसरे पहर की नमाज, दिन के चार बजे पढी जाती है। ४—नमाज ए मगरब, उस वक्त जब दिन छिप रहा हो। ५—नमाज़-ए-इशा, यह एक पहर रात गये या नौ दस बजे के करीब पढी जाती है। दूसरी, तीसरी और पाँचवी नमाज में चार रकत पढ़नी चाहिये और चौथी में तीन व पहली में दो रकत पढना फर्ज है।

नमाज-ए-जुम्मा:—शुक्रवार के दिन सब मुसलमानों को जरूर मसजिद में जमा होकर जुहर की नमाज पढनी चाहिये। जो सफर में हों या बीमार हों या जो नौकर हों या औरत हों या बच्चे हों या पागल हों, या अन्धे या लगडे हों उनके लिये मसजिद में जाना जरूरी नहीं है। इस नमाज़ में चार के बदले दो रकत ही फर्ज हैं। रकत के सिवाय इमाम एक छोटा सा .खुतबा या वाज़ और देता है। खुतबा इमाम के सिवाय दूसरा मनुष्य भी इमाम की इजाजत से दे सकता है। शुक्रवार का दिन बड़ा पाक है।

सफर में नमाज़:—जब कोई सफ़र कर रहा हो तो वह वज़ू के बदले तयम्मुम कर सकता है और चार रकत की जगह पर दो रकत पढ़ सकता है। उनको शुक्रवार के दिन मस्जिद में जाना जरूरी नहीं है।

नमाज-ए-खौफ़:—यह उस वक्त पढी जाती है कि जब लडाई के वक्त दुशमन का डर हो। इसमे मक्का शरीफ की ओर मुँह करना या घोड़े से उतरना जरूरी नहीं है। फौज के दो हिस्से हो जाते हैं कि जिससे जब तक एक हिस्सा नमाज़ पढे दूसरा हिस्सा लड़ाई के लिये तैयार रहे।

नमाज-ए-खुसूफः—जब सूर्य ग्रहण पड़े उस समय भी मसजिद में जाकर नमाज पढनी चाहिये। चन्द्र ग्रहण के वक्त घर पर ही नमाज पढनी चाहिये इसको नमाज-ए-खुसूफ कहते हैं। जब तक ग्रहण खतम न हो दुआ करते रहना चाहिये।

३—रोजा रमजानः—हर मुसलमान का फर्ज़ है कि रमजान के महीने में रोजा रक्खे। सूरज निकलने से सूरज छिपने तक पानी भी न पिये। दात साफ करने हों तो उनको भी दिन निकलने से पहले ही कर ले। रमजान उस दिन मे शुरू हो जाता है जिस दिन चाँद दिखाई दे जाय। अगर एक भी मुसलमान को चाँद दिखाई दे जाय तब भी रमजान शुरू हो जाता है। बच्चों को रोजा रखना जरूरी नहीं है। जो लोग सफर मे हों या बीमार हों या जिन औरतो के पास दूध पीते बच्चे हों और इस लिये रोजा न रख सकते हों व इसके बदले फिर किसी वक्त रोजा रख लें। अगर कोई जान बूझ कर रोजे को तोड दे तो वह या तो साठ आदमियों को दोनों वक्त खाना खिलावे या एक आदमी को ही साठ दिन तक खाना खिलावे। अगर कोई बुढापे के कारण रोजा न रख सके तो उसे सदका देना चाहिये, यानी किसी गरीब को रमज़ान के महीने में हर दिन खाना देना चाहिये। सूरज छिपने पर रोजा खोला

जाता है। उस समय खाना थोडा सा पानी पीकर या छुहारा खाकर शुरू करते हैं। इस खाने को इफ्तार कहते हैं। इसके सिवाय दिन निकलने से पहले भी खाना खाते हैं कि जिससे दिन में भूख न लगे। इस खाने को "सहरी" कहते हैं। रमजान के महीने में यहूदी लोग भी रोज़ा रखते थे लेकिन उन लोगों में सहरी खाने की रिवाज नहीं थी।

रमजान का महीना बडा पाक माना जाता है। इसमें हजरत मुहम्मद साहब को कुरान शरीफ का इलहाम हुआ था। कहते हैं कि रमजान के महीने में बहिश्त का दरवाज़ा खुला रहता है और शैतान बँधा रहता है।

एत्तिकाफ़.—रमजान के आख़िरी दस दिन में किसी एक दिन के लिये एत्तिकाफ़ या एकान्त वास करना जरूरी है। एकान्त वास करने वाला दिन मे किसी से बात नहीं करता। एक स्थान में बैठ कर ख़ुदा का ध्यान करता है। उस वक़्त कुरान शरीफ को पढना बहुत अच्छा है। रात को वह मनुष्य खाना खाता है, सोता है, और अपने काम करने वालों को काम करते रहने के लिये हुकुम भी दे सकता है। लेकिन वह मसजिद के बाहर, सिवाय सफाई, वज़ू, वगैरह के लिये, नहीं जा सकता।

नमाज़-ए तरावीह'—रमजान के महीने मे इशा की नमाज मे मामूली नमाज़ के पीछे बीस रकात और पढनी चाहिये। इसको नमाज़-ए-तरावीह कहते हैं। लेकिन यह नमाज फर्ज नहीं है। फिर भी इसका पढना अच्छा है। धर्मात्मा लोग हर एक दिन क़ुरान शरीफ का एक सिपारा पढा करते है और महीने भर में सम्पूर्ण कुरान शरीफ को पढ़ लेते हैं।

ईद-उल-फितरः—रमज़ान के दिन ख़तम होने पर "ईद-उल-फितर" के दिन सब मुसलमान रोज़ा खोलते हैं। उस दिन पहले ग़रीबों को सद्का अथवा दान दिया जाता है। सब लोग खाना खाने के बाद शुक्रवार के समान मसजिद मे जमा होकर नमाज़ पढते हैं। फिर दिन भर अपने दोस्त अहबाब से मिलने और खुशी मनाने में बिताते हैं। इसको ईद-उल-फितर इसलिये कहते हैं कि इस दिन रमज़ान के पीछे पहले दिन इफ्तार किया जाता है अथवा खाना खाया जाता है।

४—ज़कात.—हर एक आज़ाद मुसलमान को जो किसी का गुलाम न हो साल भर मे एक बार अपनी आमदनी का चालीसवां हिस्सा ज़कात मे देना जरूरी है। लेकिन ज़कात देने वाले की आमदनी कम से कम लगभग ५५ तोला चाँदी या ७½ माशा सोना होनी चाहिये। इतना नहीं हो तो वह गरीब गिना जावेगा और उसे जकात देना ज़रूरी नहीं है। ज़कात का हिसाब लगाने के वक्त घर में अनाज, असबाब, कपड़े, घोड़े, नौकर, जो कर्ज देना हो, वह सब घटा कर ज़कात का हिसाब लगाना चाहिये। जवाहरात पर जकात नहीं लगती। भेड़ों व जानवरों मे १२० की तादाद पर एक भेड़ २०० पर तीन और फिर हर सौ पर एक भेड़ देना चाहिये। घोड़ों और ऊँटों के दाम पर ढाई रुपया सैकड़ा जकात देनी चाहिये। तीस गायों से कम पर या पाँच ऊँटों के [illegible] से कम अनाज, [illegible] पर जकात नहीं लगती।

जकात [illegible], [illegible] जो [illegible] से दबे हुये हों उनको, [illegible] को आज़ाद करने के लिये, देनी चाहिये। जकात मसजिद बनाने

को, दफ़नाने को, अपने ही माता पिता या बच्चों को, अमीर आदमी या उसके लड़के व नौकर को, या रसूल अल्लाह के खानदान के लोगों को नहीं देनी चाहिए।

५—हज:—जिस मुसलमान के पास ख़र्च के लिये रुपया हो उसको जिन्दगी में एक बार मक्का शरीफ की यात्रा करना फ़र्ज़ है। हज "ज़िलहिज" के महीने में की जाती है। जब यात्री मक्का के पास पहुँचते हैं तो पहले कपड़े उतार कर वज़ू या गुस्ल करके दो रकात की नमाज पढ कर "इहराम" पहनते हैं। इहराम दो चादरें होती हैं। एक तो जिस्म से लपेट ली जाती है और दूसरी ओढली जाती है। इहराम पहन कर हाजी हज करने की नीयत करता है। वह शिकार खेलना छोड़ देता है। किसी जानवर को नहीं मारता सिर व दाढ़ी के बाल नहीं कटवाता और कोई तिजारत वगैरा के काम नहीं करता। सिर व मुख खुला रखता है। वह रास्ते में लब्बेक कहता हुआ मक्का शरीफ़ पहुँचता है। जो लोग मिलते हैं उनसे भी लब्बेक कह कर सलाम करता है। दुआए करता हुआ वह "हज्र-उल-असवद" (या काला पत्थर) के पास पहुँचता है और उसको चूमता है। अगर भीड हो तो किसी लकडी या हाथ से छूकर उसे ही चूम लेता है। वह उस समय दिल में कहता है "ऐ ख़ुदा यह मैं तेरे रसूल की नक़ल करता हूं, तू रसूल को शान्ति दे।" फिर हाजी काबा की सात परिक्रमा करता है। इसको "तवाफ" कहते हैं। परिक्रमा के पीछे काबा की दीवाल से छाती और मुंह लगा कर मिलता है। फिर जहां हजरत इब्राहीम नमाज पढते थे वहां खड़ा होकर दो रकात पढ़ता है। जमज़म के पाक पानी को पीता

है और हज्र-उल-असवद को फिर चूमता है। इसके पीछे हाजी सफ़ा और मरवा नाम के पहाड़ों के बीच में सात बार दौड़ लगाता है।

हज के आठवें दिन "मिना" की घाटी में जाकर नमाज़ पढता है। नवे दिन "अरिफात" के पहाड़ की यात्रा करता है। वहाँ से "मुज़्द-लोफा" मे ठहर कर मिना में फिर जाकर सात ककड़ तीन खम्भों पर, जो वहाँ पर हैं, फेंकता है। कहते हैं यहाँ पर शैतान ने हजरत इसमाईल को बहकाया था। यह ककड तकबीर पढ़ कर (यानी अल्ला-उ-अकबर पढ कर) उसके मारे जाते हैं। इनके पीछे ईद-उज़-ज़ुहा की क़ुरबानी करके सिर के बाल व नाखून कटवा कर, तीन दिन तक मिना में रह कर लौटने के वक्त रास्ते के लिये खाना तैयार करता है और हर दिन सात ककड़ उन खम्भो में मारता है। इसके बाद फिर काबा को जाकर बिदा होने के वक्त काबा शरीफ की परिक्रमा करके ज़मज़म का पानी पीकर काबा शरीफ की चौखट को चूम कर लौटता है।

हज्र-उल-असवद को चूमना, ईद-उज-जुहा की कुरबानी, इहराम पहनना, सफ़ा व मरवाह के पहाडों पर जाना, मिना में पत्थर फेकना, काबा शरीफ की परिक्रमा वगैरा यह सब रस्में काबा शरीफ में हजरत मुहम्मद साहब के पहले से भी होती थीं। हजरत साहब ने इन सब को पहले के मुआफ़िक़ ही रक्खा लेकिन काबा शरीफ मे रक्खे जाने वाले तीन सौ साठ देवताओं को वहाँ से दूर कर दिया था।

वाजिब —पाँच फर्जों के सिवाय सात वाजिब या उचित कार्य हैं। वह नीचे लिखे हैं। १—उमरा —यह मक्का शरीफ की हज के पीछे हुआ करता है। एक बार हज करना तो फर्ज है लेकिन अगर हो सके

तो फिर भी यात्रा करनी चाहिये। इस यात्रा के लिये कोई ख़ास वक्त नहीं है। ज्यादातर हाजी लोग हज करके उसी वक्त दो चार दिन पीछे इसको भी करते हैं। २—माता पिता का हुकुम मानना। ३— औरत का अपने ख़ाविन्द के हुकुम मे चलना। ४—खैरात या सदका देना। ५—ईद-उज़-ज़ुहा के वक्त क़ुरबानी करना—६—नमाज़-ए-वित्र — इशा की नमाज के वक्त जो मामूली रकात के अलावा तीन, पाँच या सात रकात और पढ़ी जाय तो वह नमाज़े वित्र कहलाती है। ७—अपने रिश्तेदारो की मदद करना:—सदक़ा देना और रिश्तेदारों की मदद उन लोगों के लिये तो वाजिब है जिनके पास धन है। ग़रीब लोगों के लिये यह अच्छा काम है लेकिन ज़रूरी नहीं है।

सुन्नत यानी फितरत:—यह काम या तो हजरत साहब के कामों की नकल में किये जाते हैं या पहले से ही होते हुए चले आ रहे हैं, जिनको हज़रत साहब ने बन्द नहीं किया। इस तरह के काम चार हैं। १—ख़तना २—सिर व जिस्म के बाल कटवाना ३—नाख़ून कटवाना ४—फ़र्ज़ नमाज़ के पहले कुछ रकात पढ़ना।

इनके सिवाय वह काम जो हजरत साहब कभी कभी करते थे "मुस्तहब" समझे जाते हैं। इनका करना ज़रूरी नहीं है लेकिन अच्छा समझा जाता है। मुबाह काम वह हैं जिनके न करने से कोई बुराई नहीं होती।

दिन की पाँच नमाज़ों के सिवाय तीन वक़्त और हैं जो "नफ़्ल" नमाज़ कहलाती हैं। इनका पढना ज़रूरी नहीं है लेकिन मुस्तहब (प्रशसनीय है)। इनका समय सूरज निकलने पर सात बजे के करीब (इशराक की नमाज) दिन के ग्यारह बजे के क़रीब (जुहा की नमाज) आधी रात के पीछे (तहज्जुद की नमाज़) है।

——

ईसाई धर्म

१—ईसाई धर्म के मुख्य सिद्धान्त

ईश्वर:—ईश्वर में कोई रूप रंग, आकार आदि नहीं है। यद्यपि वे अग्नि के मध्य में से पैगम्बरों से बोले हैं जैसे कि हजरत मूसा से बोले थे परन्तु वे अग्नि नहीं हैं। सांसारिक किसी भी वस्तु का स्वरूप उनका सा नहीं कहा जा सकता। भगवान निराकार हैं परन्तु उनमें निम्न-लिखित आवश्यक गुण हैं।

१—एकता अथवा अद्वितीयता:—भगवान एक हैं। उनके समान और दूसरा कोई ईश्वर नहीं है। भगवान के पहले या पीछे कोई दूसरा ईश्वर नहीं है। सदैव से वही एक ईश्वर हैं और वही एक रहेंगे।

२—सरलता अथवा अखंडता:—भगवान में खंड नहीं हो सकते। वे सर्वत्र एक से ही हैं। एक रस हैं। जिस प्रकार मनुष्य शरीर और जीव दो वस्तुओं से मिलकर बना है। इस प्रकार भगवान में द्वैत नहीं है। इसलिये जिस प्रकार मनुष्य में शारीरिक इच्छाओं के कारण कभी कभी मन और बुद्धि में विरोध हो जाता है (जैसे कि रोगी का मन तो किसी वस्तु को खाने को करे परन्तु उसकी बुद्धि उसे मना करे) भगवान में किसी प्रकार का विरोध उपस्थित हो नहीं सकता।

३—अपरिमितता:—भगवान अपरिमित हैं। उनका आदि अन्त

नहीं है। वे अनादि और अनन्त हैं। इसलिये सर्व-व्यापक हैं। क्योंकि उनका किसी स्थान पर भी अन्त नहीं है। यद्यपि वे सर्व-व्यापक हैं परन्तु फिर भी सांसारिक वस्तुओं से भिन्न हैं।

४—अजन्माः—भगवान विस्तार में ही अपरिमिति नहीं हैं वरन समय में भी अपरिमित हैं। इसलिये वे अजन्मा हैं और उनकी कभी मृत्यु नहीं हो सकती। वे अमर हैं।

५—निर्विकारिताः—भगवान निर्विकार हैं। उनमें कभी कोई परिवर्तन या अन्तर नहीं पड़ता। वे सदैव एक रस रहते हैं। इसलिये उनमे किसी प्रकार का भी विकार, मलीनता या परिवर्तन नहीं हो सकता।

६—सर्वज्ञताः—भगवान सर्वज्ञ हैं, वे सब जानते हैं। मनुष्य तो अल्पज्ञ होने के कारण एक समय मे एक ही बात जान सकता है परन्तु भगवान एक समय मे ही सब बाते जानते हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य की सब बाते उनको मालूम हैं।

७—क्रिया शीलताः—भगवान संसार को अपनी इच्छानुसार चलाते हैं। उनकी इच्छायें दो प्रकार की होती हैं। एक तो साधारण, जैसे भगवान की सदैव यही इच्छा है कि मनुष्य सुख से रहे। दूसरी विशेष जो विशेष परिस्थितियों मे विशेष प्रकार की होती हैं। जैसे यदि कोई मनुष्य पाप करे तो उसी के सम्हालने के लिये भगवान की इच्छा उसे दण्ड देने की हो। भगवान ने मनुष्य की स्वतन्त्रता दी है परन्तु वह अपनी स्वतन्त्रता का प्रयोग भी उसी संसार मे कर सकता है जो ईश्वर की इच्छा से बना है और उस संसार के नियमों से स्वतन्त्र मनुष्य भी बँधा है।

८—सर्वशक्तिमानताः—ईश्वर सर्व शक्तिमान है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह मर भी सकते हों या पाप कर सकते हों। यह उनके लिये असम्भव है। अपने अन्य गुणों को सुरक्षित रखते हुए जिन कार्यों की आवश्यकता हो वे सब कर सकते हैं। उनके गुण तो उनकी सत्ता के साथ ही लगे हुए हैं। वे सदैव से उनमें हैं और सदैव उनमें रहेंगे।

९—बुद्धिः—भगवान सर्व शक्तिमान हैं। क्रियाशील हैं और सर्वज्ञ हैं इसलिये उनके सब कार्य परम रहस्यपूर्ण होते हैं। जिनको मनुष्य भी नहीं समझ सकता क्योंकि मनुष्य अल्प बुद्धि है। परन्तु भगवान सर्वज्ञ हैं इसीलिये परम बुद्धिमान भी हैं।

१०—परम पवित्रः—भगवान परम पवित्र, शुद्ध प्रकाश रूप हैं। सर्वत्र उन्हीं का तेज व्यापक है। परम पवित्र होने से उनमें द्वेष आदि मलीनता नहीं हैं इसीलिये वे परम दयालु, दयाशील और प्रेममय हैं। वे पापियों को भी प्रेम से पवित्र करने वाले पतित पावन हैं। वे अपने इस पवित्र और दयालु स्वभाव के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते। उनकी शक्ति में इतनी ही कमी है और यह कमी भी उनकी परम पवित्रता के कारण है, और इस पवित्रता की पूर्णता का प्रमाण है।

११—सत्य रूपः—भगवान सदैव सत्य स्वरूप हैं। जो एक रस और सरल हैं, उनमें झूठ का द्वैत आ ही नहीं सकता। इसलिये सत्य उनका स्वाभाविक गुण है। वरन् सत्य ही उनका स्वरूप है।

१२—न्याय शीलता.—भगवान न्याय शील हैं। वे दयाशील भी हैं। वे क्षमा कर देते हैं परन्तु किसी पर अत्याचार नहीं करते।

यदि कोई किसी को दुख दे तो उनकी क्षमा का अर्थ यह नहीं है कि अत्याचारी अत्याचार करता रहे और वे क्षमा करते रहे। वे क्षमा जभी करेगे कि जब अत्याचारी अत्याचार छोड़ कर सच्चे मन से पछतावे। तब वे दुखी का दुख दूर कर देगे और आगे को दुख की बढती न होगी। वे छोटे से छोटे कार्य को भी जानते हैं और सब का अच्छा बुरा पुरस्कार देते हैं। यह गुण उनमे मनुष्य के सम्बन्ध से है और इस सम्बन्ध को मनुष्य स्वय अपने कार्यों से उनके साथ स्थापित करता है।

त्रिमूर्तिः—यद्यपि भगवान एक हैं परन्तु वह तीन स्वरूपों मे रहते हैं। यह तीन स्वरूप उनके सदैव से हैं और सदैव रहेंगे। इन तीनों स्वरूपों मे कोई स्वभाव या शक्ति का भेद नहीं है। इनके तीन स्वरूप पृथक पृथक व्यक्तित्व वाले नही हैं। वरन् एक ही भगवान के तीनों स्वरूप ऐसे हैं जैसे कि बिजली मे शक्ति, गर्मी और प्रकाश है। भिन्न भिन्न अवस्था में बिजली भिन्न भिन्न स्वरूपो मे प्रकट हो सकती है परन्तु बिजली रहती एक ही है। अप्रकट अवस्था मे तीनों स्वरूप सदैव भगवान मे रहते हैं। यह तीन स्वरूप १—पिता रूप ईश्वर २—पुत्र रूप ईश्वर और ३—पवित्र आत्मा कहलाते है।

भगवान ईसा कहा करते थे कि "मै और मेरा पिता एक ही हैं। जिसने मुझे देख लिया उसने मेरे पिता को देख लिया"। तीनों हैं एक ही वस्तु। यह भी नहीं है कि तीनों जुड़े हुए हों। यही विचित्रता है कि तीन पृथक होते हुए भी यथार्थ में एक ही है। इनमे तीनों ही भगवान के स्वरूप हैं और तीनों मे ही वह सब गुण है जिनको ऊपर लिखा जा चुका है। किसी मे कोई कम या ज्यादा गुण नहीं है। इसीलिये

भगवान ईसा मसीह को भगवान का अवतार कहते हैं। क्योंकि ये "पुत्र रूप" भगवान के अवतार थे।

इन तीनों में भेद यह है कि पिता रूप ईश्वर तो स्वयम्भू है अर्थात् अपनी सत्ता मे स्थित है। पुत्र रूप ईश्वर और पवित्र आत्मा की सत्ता पिता रूप ईश्वर की सत्ता के कारण है। इसका यह अर्थ नहीं है कि पिता और पुत्र में पहले या पीछे पैदा होने का भेद हो। दोनों ही अनादि है। पिता भी सदैव से हैं और पुत्र व पवित्र आत्मा भी सदैव से है और सदैव रहेंगे। इनका भेद समझने को यह समझना चाहिये कि ईश्वरत्व का श्रोत तो पिता हैं और उस श्रोत से बहते हुये ईश्वर के ही स्वरूप पुत्र व पवित्र आत्मा हैं। किसी नदी के किसी स्थान पर भी वह नदी श्रोत की नदी अथवा मोहाने की नदी से भिन्न नहीं है। सर्वत्र एक ही नदी है। फिर भी उस विशेष स्थान की नदी का नाम विशेष पड़ सकता है अथवा उसको विशेष घाट के नाम से पुकार सकते है। यथार्थ में नदी सारी एक ही है, तथापि उसके विविध नाम और भेद हो सकते है। श्रोत की नदी को बहाव की नदी की अपेक्षा नहीं है। परन्तु बहाव की नदी को श्रोत की नदी की अपेक्षा है। श्रोत में और बहाव में पहले पीछे का भेद इसलिये है कि श्रोत का भी आदि है। यदि नदी का श्रोत अनादि होता तो उसका बहाव भी अनादि होता क्योंकि जब से श्रोत होता तभी से बहाव भी होता। श्रोत के अनादि होने से पहले पीछे का भेद नहीं हो सकता। ऐसा ही सम्बन्ध पिता पुत्र व पवित्र आत्मा का है। परन्तु इससे भी अत्यन्त गूढ़ है। यह उपमा तो उनके [illegible]

उपर्युक्त उपमा से पवित्रात्मा और पुत्र का सम्बन्ध भी स्पष्ट हो जाता है। जिस प्रकार मोहाने की नदी श्रोत की नदी से ही निकली है इसी प्रकार पवित्र आत्मा का श्रोत भी पिता है। परन्तु मुहाने की नदी बीच की नदी से निकली कही जा सकती है। क्योंकि उसी में होकर वह मुहाने का स्वरूप प्राप्त करती है। इसी प्रकार पवित्र आत्मा का श्रोत पुत्र भी कहा जा सकता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि यह भिन्नता कहने मात्र की है। यद्यपि स्वरूप की भिन्नता प्रतीत होती है परन्तु यथार्थ मे कोई भिन्नता नहीं है। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि सासारिक वस्तु की उपमा होने के कारण नदी में तो खड है। परन्तु ईश्वर मे खड नहीं हैं। उसके स्वरूप का भिन्नता तो क्रिया की भिन्नता के कारण है। पिता, पुत्र, पवित्र आत्मा एक ही समय में पृथक क्रिया करने के कारण पृथक व्यक्तित्व को प्राप्त हुए। परन्तु जहाँ वह अपने अपने स्वरूप से पृथक क्रियाएँ करते हैं, वहाँ साथ ही साथ दूसरे स्वरूपों की क्रियाओं में भी कर्ता रूप मे सम्मिलित रहते हैं क्योंकि वह तीनों हैं तो एक ही।

भगवान ईसा मसीह:—ईसाई धर्म का यही मूल सिद्धान्त है। धर्म के परिणाम स्वरूप भगवान ईसा का पिता रूप ईश्वर व मनुष्य में सम्बन्ध होता है। भगवान ने पहले पैगम्बरों मे यह वचन दिया था कि वे स्वयं अवतार लेकर पूर्ण ज्ञान का उपदेश करेंगे और मनुष्य का उद्धार करेंगे। जब संसार मे पाप बहुत बढ़ गया तब पुत्र रूप भगवान ने मनुष्य का रूप धारण करके मनुष्य व पिता रूप भगवान में सम्बन्ध स्थापित कर दिया और मनुष्यत्व को ईश्वरत्व से मिला दिया। इसलिए

जो भगवान ईसा मसीह में विश्वास करके उनमें भक्ति करते हैं उनका मनुष्यत्व भी ईश्वर से सम्बन्धित हो जाता है और उनके पाप नष्ट होकर वह पवित्र हो जाते हैं। भगवान ईसा की भक्ति से मन पवित्र, पाप रहित, शुद्ध सरल हो जाता है। और भगवान ईसा मसीह भक्ति करने योग्य भी हैं। जिन्होंने ईश्वर होकर भी मनुष्यों में सम्मिलित हो मनुष्य का स्वरूप धारण करके, मनुष्य के भले के लिये ही उस शरीर को काठ के ऊपर कीलों से गड़वाने का दुख सहन किया, ऐसे भगवान की भी मनुष्य भक्ति न करेगा तो किस की करेगा। जिन भगवान ईसा मसीह ने अपने से शत्रुता करने वालों से भी प्रेम किया वे अपने भक्तों की तो रक्षा करेंगे ही, और वे रक्षा करने में समर्थ भी हैं क्योंकि स्वय पुत्र रूप भगवान हैं। यही ईसाई धर्म का सार है।

—:o:—

२—सृष्टि रचना

ससार का रचनाक्रम प्राय. ओल्ड टेस्टामेन्ट के अनुसार है। उस में कहा है कि ईश्वर ने ससार को पुत्र के द्वारा पवित्र आत्मा की क्रिया से बनाया। ससार की सत्ता इसलिये है कि भगवान ने उसको सत्ता प्रदान की है। यदि भगवान उसको बना कर सत्ता प्रदान न करते, अर्थात् उस बनाये हुए को स्थिर न रखते, तो ससार स्थिर न रहता, क्योंकि ससार स्वय कोई सदैव रहने वाली वस्तु नहीं है। ससार के आदि में "शब्द" था, "शब्द" ईश्वर के साथ था। 'शब्द' ईश्वर था

और शब्द ही मनुष्य होगया"। अर्थात् ससार शब्द द्वारा बना परन्तु वह शब्द पहले से ही, सदैव से ही, ईश्वर के साथ था और स्वय भी ईश्वर ही था, और यही शब्द फिर ससार मे भगवान ईसा मसीह के स्वरूप में प्रकट हुआ। यही शब्द रूप ईश्वर है। कहा है कि "पानी की सतह के ऊपर ईश्वर की आत्मा ने गमन किया।" यही पवित्र आत्मा है। अस्तु ईश्वर ने पुत्र रूप ईश्वर और पवित्र आत्मा द्वारा ससार की रचना की। यह रचना छः दिन मे हुई जो सप्ताह के छ दिन हैं। सब से पहले फिरिश्ते बने फिर स्वर्ग और पृथ्वी बन गये।

फिरिश्ते·--फिरिश्ते भी भगवान के बनाये हुये जीव हैं परन्तु ये मनुष्यों से भिन्न प्रकार के होते हैं। यद्यपि उनका कोई दिखाई पडने वाला शरीर नहीं होता परन्तु फिर भी वे होते सीमित आकार के ही हैं। इसलिये वे सर्व व्यापक नहीं होते। फिरिश्तों की शक्तियाँ मनुष्यों से कहीं अधिक होती हैं। ये फिरिश्ते सृष्टि रचना से पहले ही बन गये थे। जब आकाश और पृथ्वी बन गये तब भगवान ने "हजरत आदम" एक मनुष्य को बनाया। यद्यपि हजरत आदम मनुष्य थे तथापि भगवान ने उनको फिरिश्तों से भी अधिक माना। कहते हैं कि ईश्वर ने सब फिरिश्तों को आज्ञा दी कि हजरत आदम को नमस्कार करो। एक बडे शक्तिशाली मुख्य फिरिश्ते ने और उसके साथ कुछ अन्य फिरिश्तों ने मनुष्य को प्रणाम करना स्वीकार नहीं किया। ईश्वर की इस आज्ञा को न मानने के दण्ड में उन फिरिश्तों को नर्क में डाल दिया गया और वह मुख्य फिरिश्ता उन नर्क में पडे हुए फिरिश्तों का मुखिया "शैतान" बन गया। कहते हैं कि उस समय से शैतान ने बदला लेने के लिये ईश्वर

सृष्टि में विघ्न डालना और ईश्वर के प्यारे मनुष्य को बहका कर
। कराना ही अपना काम बना रक्खा है।

जो फिरिश्ते स्वर्ग में रह गये उनके नौ दर्जे कहे जाते हैं।

१—सेराफिम २—शैरूबिम ३—थ्रोन्स ४—डुमिनियन्स ५—
र्स ६—औथौरिटीज ७—प्रिन्सडम्स ८—आर्केन्जिल ९—एन्जिल।

प्रथम तीन दर्जों को भगवान का प्रत्यक्ष दर्शन होता रहता है।
फिम तो सदैव ईश्वर के दर्शन में डूबे रहते हैं। इनके मन में तो
ी प्रकार का विचार उठता ही नहीं। केवल भगवद् दर्शन का ही
नन्द भरा रहता है। शैरूबिम भगवान के दर्शन करते हैं और बुद्धि
भी भगवान को समझे हुए रहते हैं परन्तु उनके मन में ईश्वर
न्धी ज्ञान के अतिरिक्त और कोई विचार नहीं होते। थ्रोन्स दर्जे के
रिश्ते मन के उन सब भावों को जो भगवद् ज्ञान के अतिरिक्त हों
ज में ही वश में किये रहते हैं। चौथे दर्जे के डुमिनियन्स इसलिये
लाते हैं कि इनको अहंकार, अभिमान, मद मत्सर आदि कुप्रवृत्तियों
पूर्ण अधिकार बना रहता है। ऐसे दोष उनकी कुछ हानि नहीं कर
ते। पौवर्स नाम के फिरिश्ते बड़े शक्तिशाली और साहसी होते हैं।
थोरिटीज नाम के फिरिश्तों का जीवन भगवान के आज्ञानुसार
नियमित होता है।

करते हैं। आर्केन्जिल भगवान का सन्देश ले जाने का कार्य करते हैं और एन्जिल अथवा साधारण फ़िरिश्ते मनुष्य की अनेक प्रकार से सहायता करते हैं। प्रत्येक मनुष्य के लिये एक फिरिश्ता नियत होता है जो उसकी देख भाल करता रहता है और कठिनाई पडने पर उसकी सहायता करता है। परन्तु यह सहायता उस मनुष्य के धर्मात्मा होने पर निर्भर है। जितना वह पापी होगा उतना ही वह फिरिश्ता उससे विमुख होगा। ईसाइयों के अतिरिक्त अन्य धर्म वाले मनुष्यों के लिये भी इस प्रकार फिरिश्ते नियत हैं।

स्वर्गीय फिरिश्ते नर्क मे गिरे हुए शैतान के साथियों से सदैव लडते रहते हैं और उनको पृथ्वी पर से भगाते रहते हैं जिससे वे मनुष्य को बहका न सके। इनका सरदार आर्केन्जिल मिकेल हैं, मिकेल के अतिरिक्त दो और आर्केन्जिल उल्लेखनीय हैं। वे जिबराईल और रेफिल हैं। जिबराईल अधिकतर भगवान के सन्देश ले जाने का कार्य करता है। फिरिश्तों की उत्पत्ति इत्यादि का यह वृतात कैथोलिक लोगों के मत के अनुसार है, प्रोटेस्टेन्ट लोग बहुधा सृष्टि रचना के इस क्रम अथवा फिरिश्तो की इस उत्पत्ति को नहीं मानते। परन्तु शब्द और ईश्वर का सम्बन्ध जो इस प्रकरण मे लिखा गया है उसे स्वीकार करते हैं।

हजरत आदम —आकाश और पृथ्वी बन जाने पर ईश्वर ने एक मिट्टी का पुतला बनाया और उसमे रूह या जीव फूक दिया। जिससे वह पुतला जीवित हो गया। उसी का नाम हजरत आदम था। इसी प्रकार ईश्वर ने एक स्त्री बनाई जिसका नाम ईव या हव्वा था। ये

मनुष्य ईश्वर ने अपने प्रतिबिम्ब के समान बनाये थे परन्तु वह प्रतिबिम्ब की समानता शरीर में नहीं थी, क्योंकि ईश्वर के तो कोई शरीर है ही नहीं, वरन् आत्मा और मन की समानता थी, और वह समानता भी प्रतिबिम्ब मात्र थी। आरम्भ में हज़रत आदम और श्रीमती हव्वा सर्वथा शुद्ध व पाप रहित थे। वे इतने भोले थे कि कपड़ा पहनना भी नहीं जानते थे। ईश्वर ने उनको स्वर्ग के अदन नाम के उपवन में रक्खा और उस उपवन की देख भाल उनको सौंप दी। उनको दूसरा काम ईश्वर के बनाये हुये पशु पक्षियों का नाम नियत करना दिया गया। इस प्रकार हजरत आदम को अपनी विचार शक्ति का प्रयोग करके विकास करने का अवसर मिला। उस उपवन में एक ज्ञान का वृक्ष था। ईश्वर ने हजरत आदम व श्रीमती हव्वा को उस वृक्ष का फल खाने से मना कर दिया था। उस ज्ञान के फल खाने का प्रभाव यह था कि उसको खाने वाला भगवान के शुद्ध सरल ज्ञान के स्थान पर पाप पुण्य व सांसारिक दुख सुख का ज्ञान समझने लगता था। सांसारिक सुख के समझने से उसकी इच्छा तथा उस इच्छा की पूर्ति के लिये पाप कर्म की सम्भावना थी। कुछ दिन तक हजरत आदम व श्रीमती हव्वा ने ईश्वर की इस आज्ञा का पालन किया परन्तु एक दिन शैतान ने श्रीमती हव्वा से उस फल की प्रशंसा करके बहकाया। श्रीमती हव्वा ने वह फल तोड़ कर खा लिया। फिर हजरत आदम ने भी वह फल खाया। इस प्रकार शैतान के बहकाने से उन्होंने ईश्वर आज्ञा को तोड़ा और उस सुन्दर स्वादिष्ट फल के खाने के लोभ में आ गये। परम पवित्र अवस्था में इस प्रकार पाप हुआ गया और उनकी उनकी पवित्रता थी

उससे वह पाप भी घोर प्रतीत होने लगा। जो स्वभाव से ही पापी हो उसके बड़े पाप मे भी आश्चर्य नहीं होता परन्तु जो स्वभाव से पवित्र हो उसके लिये थोड़ा सा पाप भी बडा प्रतीत होता है। भगवान ने उनके इस प्रकार आज्ञा उल्लघन करने पर उनको अदन के उपवन से निकाल कर पृथ्वी पर डाल दिया।

मूल पापः—अब वे ही हज़रत आदम व श्रीमती हव्वा कपडे पहनने लगे और उनकी सन्तान हुई जो मनुष्य कहलाई। जो पाप का भाव उनके स्वाभाव मे घुस गया था वह उनकी सन्तान में भी पैदा होगया और सासारिक इच्छाओ के बढने से वह बढता रहा। जब हजरत आदम शुद्ध अवस्था मे थे उस समय उन पर मृत्यु का भी अधिकार नही था। इस पाप के उत्पन्न होने से ससार मे मृत्यु भी पैदा होगई। अब मनुष्य फिर भगवान के समीप जभी पहुँच सकता है जब कि उस पाप के प्रभाव को दूर कर ले। इसके लिये ईश्वर ने मनुष्य को कर्म की स्वतन्त्रता दी है कि वह सदैव धर्म करके पाप के प्रभाव को दूर कर दे। परन्तु वह पाप भाव मनुष्य के हृदय मे ऐसा घुसा है कि पूर्णतया पवित्र नहीं होने देता। इसलिये मनुष्य को पवित्र कर फिर से ग्रहण करने के लिये पैग़म्बरों ने भगवान से प्रार्थना की थी और भगवान ने आश्वासन दिया था कि जब मनुष्य उनके उपदेश को समझने के योग्य हो जायगा तो वे उसे पवित्र करने का प्रबन्ध करेंगे। इसी वचन को पूर्ण करने के लिये ईश्वर ने अपने पुत्र रूप को भगवान ईसा मसीह के रूप मे अवतार दिया।

———

३—भगवान ईसा का अवतार

हजरत आदम के अदन से निकाले जाने और भगवान के अवतार में विलम्ब इस लिये हुआ कि पहले तो मनुष्य अपनी स्वन्त्रता के घमड में पवित्र होने का प्रयत्न करता रहा। जब उसमें सफल न हुआ तब भगवान ने दया कर के पैगम्बरों द्वारा धर्मोपदेश भी दिया फिर भी मनुष्य अपने स्वाभाविक पाप के कारण गिरता ही गया। जब उसने निराश होकर भगवान से उद्धार की प्रार्थना की तब भगवान ने अवतार लेकर भगवद्-भक्ति (भगवान ईसा की भक्ति) के सरल मार्ग का उपदेश दिया। भगवान ने मनुष्य शरीर धारण किया इस लिये अवतार को अंग्रेजी में इन्कारनेशन, अथवा स्थूल शरीर मे आना, कहते हैं।

भगवान ईसा मसीह ने जीवन में वह आदर्श उपस्थित किया कि जो ईश्वर के प्रतिबिम्ब मनुष्य का होना चाहिये। जो सर्वथा पाप रहित है, जिसमें सब सद्गुण हों और जो परम पवित्र व शुद्ध हो। भगवान ईसा मसीह के व्यक्तित्व में चार बातें थीं। १—वह ईश्वर थे। २—उनमें पूर्ण मनुष्यत्व था ३—वे थे एक ही व्यक्ति ४—परन्तु उनमें ईश्वरत्व और मनुष्यत्व दोनों प्रकार के स्वभाव मिले हुए थे।

उससे वह पाप भी घोर प्रतीत होने लगा। जो स्वभाव से ही पापी हो उसके बड़े पाप मे भी आश्चर्य नहीं होता परन्तु जो स्वभाव से पवित्र हो उसके लिये थोड़ा सा पाप भी बडा प्रतीत होता है। भगवान ने उनके इस प्रकार आज्ञा उल्लघन करने पर उनको अदन के उपवन से निकाल कर पृथ्वी पर डाल दिया।

मूल पापः—अब वे ही हज़रत आदम व श्रीमती हव्वा कपडे पहनने लगे और उनकी सन्तान हुई जो मनुष्य कहलाई। जो पाप का भाव उनके स्वाभाव मे घुस गया था वह उनकी सन्तान में भी पैदा होगया और सासारिक इच्छाओ के बढने से वह बढता रहा। जब हजरत आदम शुद्ध अवस्था मे थे उस समय उन पर मृत्यु का भी अधिकार नहीं था। इस पाप के उत्पन्न होने से ससार मे मृत्यु भी पैदा होगई। अब मनुष्य फिर भगवान के समीप जभी पहुँच सकता है जब कि उस पाप के प्रभाव को दूर कर ले। इसके लिये ईश्वर ने मनुष्य को कर्म की स्वतन्त्रता दी है कि वह सदैव धर्म करके पाप के प्रभाव को दूर कर दे। परन्तु वह पाप भाव मनुष्य के हृदय मे ऐसा घुसा है कि पूर्णतया पवित्र नहीं होने देता। इसलिये मनुष्य को पवित्र कर फिर से अपना करने के लिये पैगम्बरों ने भगवान से प्रार्थना की थी और भगवान ने आश्वासन दिया था कि जब मनुष्य उनके उपदेश को समझने के योग्य हो जायगा तो वे उसे पवित्र करने का प्रबन्ध करेंगे। इसी वचन को पूर्ण करने के लिये ईश्वर ने अपने पुत्र रूप को भगवान ईसा मसीह के रूप मे अवतार दिया।

———

३—भगवान ईसा का अवतार

हजरत आदम के अदन से निकाले जाने और भगवान के अवतार में विलम्ब इस लिये हुआ कि पहले तो मनुष्य अपनी स्वन्त्रता के घमड में पवित्र होने का प्रयत्न करता रहा। जब उसमें सफल न हुआ तब भगवान ने दया कर के पैगम्बरों द्वारा धर्मोपदेश भी दिया फिर भी मनुष्य अपने स्वाभाविक पाप के कारण गिरता ही गया। जब उसने निराश होकर भगवान से उद्धार की प्रार्थना की तब भगवान ने अवतार लेकर भगवद्-भक्ति (भगवान ईसा की भक्ति) के सरल मार्ग का उपदेश दिया। भगवान ने मनुष्य शरीर धारण किया इस लिये अवतार को अंग्रेजी में इन्कारनेशन, अथवा स्थूल शरीर मे आना, कहते हैं।

भगवान ईसा मसीह ने जीवन में वह आदर्श उपस्थित किया कि जो ईश्वर के प्रतिबिम्ब मनुष्य का होना चाहिये। जो सर्वथा पाप रहित है, जिसमें सब सद्गुण हों और जो परम पवित्र व शुद्ध हो। भगवान ईसा महीस के व्यक्तित्व में चार बाते थीं। १—वह ईश्वर थे। २—उनमें पूर्ण मनुष्यत्व था ३—वे थे एक ही व्यक्ति ४—परन्तु उनमे ईश्वरत्व और मनुष्यत्व दोनों प्रकार के स्वभाव मिले हुए थे।

१—ईश्वरत्वः—भगवान ईसा के अवतार होने के तीन प्रमाण है। प्रथम तो वह सब भविष्य वाणिया, जो अवतार के सम्बन्ध में ओल्डटेस्टेमेन्ट में की गई थीं इनके जीवन में ठीक उतरीं। जैसे बेथलेहम नगर में पैदा होना। दूसरे स्वय भगवान ईसा ने अनेक स्थान पर अपने आप को ईश्वर कहा है जैसे कि "मैं और मेरा पिता एक

ही हैं" उन्होंने उपदेश भी सदैव अपनी ओर से पुत्र रूप ईश्वर के समान दिया है। किसी दूसरे की ओर से सन्देश के समान नहीं दिया। तीसरे उन्होंने कभी कभी अपनी दिव्य शक्तियों का मनुष्य के भले के लिए प्रदर्शन भी किया है। विशेष कर उनकी मृत्यु के पीछे जीवित हो जाना ईश्वरत्व होने के कारण ही हुआ था।

यह भगवान की अत्यन्त कृपा थी कि पूर्ण ईश्वरत्व की अवस्था से वे अल्प मनुष्य शरीर में ससार के उद्धार के लिये आये। मनुष्य शरीर मे भी उनको ईश्वरत्व के सब गुण प्राप्त थे क्योंकि ईश्वर के स्वरूप मे तो कोई परिवर्तन हो ही नहीं सकता। परन्तु वे उन गुणों का प्रदर्शन मनुष्य शरीर की सीमित शक्तियों के अनुसार ही करते थे। उनके ऐसे कृपालु स्वरूप से प्रवाहित होकर ही सन्त पाल ने कहा है "मेरा दृढ विचार है कि मै सिवाय ईसा मसीह के और कुछ जानना नहीं चाहता"।

२—पूर्ण मनुष्यत्व—शैतान ने मनुष्य को बहका कर पाप का उदय किया था इसलिये मनुष्य शरीर द्वारा ही पाप को नष्ट करके शैतान को उसकी निर्बलता दिखाने के लिये भगवान का अवतार हुआ। इस अवतार मे जहां तक मनुष्यत्व का सम्बन्ध है भगवान ईसा और अन्य मनुष्यों मे इतना ही भेद है कि भगवान ईसा पाप रहित थे और मनुष्य पाप युक्त हैं। इसके अतिरिक्त और कोई भेद मनुष्यों के व भगवान ईसा के मनुष्यत्व मे नहीं है। भगवान ईसा भी मनुष्यों के समान खाते पीते सोते उठते थे। मनुष्यों के समान उनको कष्ट और दुख भी होता था। और अन्त मे मृत्यु भी हुई। परन्तु यह दुख कष्ट मृत्यु आदि

सब उनके मनुष्यत्व में हुये। उनके ईश्वरत्व पर इनका कुछ प्रभाव नहीं था। जैसे साधारण मनुष्यों का भी यदि किसी समय शरीर अपवित्र हो तो उससे उनकी आत्मा में कोई अपवित्रता नहीं आ जाती।

मनुष्य शरीर धारण करने का एक प्रयोजन यह भी था कि जिस मनुष्य को अप्रसन्न होकर अदन से निकाल दिया था उसी का शरीर फिर ग्रहण करना मानों उसके अपराध को क्षमा करना और ईश्वर से फिर उसका सम्बन्ध स्थापित करना है। जिस प्रकार भगवान ईसा ने अनेक स्थान पर ईश्वर से अपनी ऐक्यता कही है उसी प्रकार अन्य स्थानों पर अपने मनुष्यत्व को लक्ष करते हुए ईश्वर के प्रति भी कहा है "मेरी इच्छा नहीं वरन् तेरी इच्छा ही पूर्ण हो......मैं अपनी इच्छा के अनुसार नहीं करना चाहता वरन् उसकी इच्छा के अनुसार करना चाहता हूं जिसने मुझे भेजा है"।

३—एकत्व:—इसका अर्थ यह न समझना चाहिये कि भगवान ईसा अपने ईश्वरत्व व मनुष्यत्व से पृथक पृथक समयों पर कार्य करते थे। उनका व्यक्तित्व एक ही था। भगवान सब वस्तुओं में व्यापक हैं फिर उनके लिये मनुष्यत्व के साथ एक होने में कोई कठिनाई न थी। वे ईश्वर थे जिन्होने मनुष्य रूप को ग्रहण कर लिया था। यही उनकी महानता थी। उन्होने ईश्वर होकर भी मनुष्यो के समान बड़े से बड़े कष्ट सहन किये और अपने जीवन से। यह शिक्षा दी कि पवित्र जीवन से ससार के दुख सहन करने की शक्ति कैसे प्राप्त हो जाती है। बड़े से बड़े दुख में भी मन शान्त और सुखी रहता है। उनके व्यक्तित्व में ईश्वरत्व होने से उनके लिये पाप करना सम्भव नहीं

था। वे पापियों से घृणा न करके उनको भी पवित्र कर देते थे। ईसाई धर्म का यही उपदेश है कि मनुष्य उनमे विश्वास करके उनकी दया का पात्र होकर, उसी ईश्वरत्व से सम्बन्ध स्थापित कर सकता है कि जो पापियों को भी पवित्र कर देता है। इसीलिये उसके लिये स्वर्ग का द्वार खुल जाता है। भगवान ईसा ईश्वर थे। उनका ज्ञान भी पूर्ण था। उनके उपदेश भी परम धर्म हैं और सदैव के लिये सत्य हैं।

४—भिन्नत्वः—परन्तु विशेष बात यह है कि एकत्व होते हुए भी भगवान ईसा मे दोनों स्वभाव बिलकुल मिल कर एक नहीं हो गये वरन् भिन्न भिन्न रहे। जैसे यदि कोई मनुष्य कोई पुस्तक पढ रहा हो और उसके शरीर पर कोई मालिश कर रहा हो तो उसे शरीर की मालिश का भी अनुभव होगा और पढ़े हुए ज्ञान का भी होगा। उसका व्यक्तित्व एक ही है परन्तु उसके भाव भिन्न भिन्न हैं। इसी प्रकार एक ही व्यक्तित्व रखते हुए भी भगवान ईसा मे स्वभाव भिन्न थे। वे मनुष्य शरीर सहित ही स्वर्ग को चले गये। और इस भिन्नता को उन्होने आगे के लिये भी ग्रहण कर लिया कि जिससे ससार के मनुष्यों से भी सम्बन्ध बना रहे और पिता रूप भगवान से सासारिक मनुष्यो के लिये प्रार्थना भी कर सकें। इस जीवन मे भी समय के अनुसार भगवान ईश्वरत्व का व मनुष्यत्व का प्रदर्शन करते थे। मनुष्य रूप मे भूख प्यास आदि मे दुःखित भी होते थे और ईश्वर रूप मे उपदेश करते थे तथा चमत्कार दिखाते थे।

बलिदान.—अन्त मे भगवान ईसा ने काठ के ऊपर कीलों से टंगे रहकर अपार कष्ट सहते हुए प्राण त्याग किया और उस समय भी

पिता रूप भगवान से यही प्रार्थना की कि वे उनके दुख देने वालों को भी क्षमा करें। इस प्रकार अपने जीवन को पूर्ण पवित्रता से व्यतीत कर पाप को दूर करने के प्रयत्न में लगे हुए ईसा ने अपने को बलिदान करके अपने पवित्र रक्त से मनुष्य पर लगे हुए मूल पाप के कलक को धो दिया। वे अपना बलिदान करके भगवान से मनुष्यों के क्षमा करने की प्रार्थना करते हैं, मानों उन्होंने सारे मनुष्य समाज के पाप का भार अपने ऊपर लेकर, उसका दड सहन करके सब मनुष्यों के लिये ईश्वर के अनुग्रह का द्वार खोल दिया। जैसे मनुष्य शरीर ने ईश्वर की आज्ञा तोड कर मूल पाप किया था वैसे मनुष्य शरीर ने भगवान की सेवा में अर्थात् सद्धर्म का उपदेश करते हुए मनुष्यों को पश्चात्ताप करा कर उनमे भगवान की सच्ची भक्ति पैदा करने में अपने आप को बलिदान कर दिया।

पुनरुत्थान:—भगवान ईसा की मृत्यु के पीछे उनका शरीर तो पहाड की खोह में रक्खा रहा और भगवान ईसा पहले मरे हुए मनुष्यों की आत्माओं में ईश्वरीय सन्देश या उपदेश का प्रचार करते रहे। इसके पीछे उनकी आत्मा फिर शरीर से युक्त हो गई और वे संसार में फिर प्रकट हुए। इसी को उनका पुनरुत्थान कहते हैं। परन्तु इस समय उनका शरीर दिव्य हो गया था। अब वह पवित्र हुआ शरीर अमर हो गया था, क्योंकि मनुष्य के पाप से प्राप्त मृत्यु भी उस शरीर में नष्ट हो चुकी थी। वह शरीर प्रकाशवान था और उसकी सर्वत्र गति थी। वे उस शरीर से बन्द मकान में जा सकते थे और स्वर्ग को जा सकते थे। इस प्रकार मनुष्य शरीर की खोई हुई दिव्यता उन्होंने फिर लौटा दी।

स्वर्ग गमन:—इसी पवित्र मनुष्य शरीर को लिये हुए उन्होंने स्वर्ग को गमन किया कि जो शरीर उन्होंने बलिदान किया था उसे ईश्वर को अर्पण कर दे। उनके स्वर्ग मे जाने के पीछे ही पवित्र आत्मा उनके चेलों पर व अन्य ईसाइयों पर उतरा। ये भगवान की क्षमा और कृपा का सूचक था। भगवान ईसा के जीवन मे इस प्रकार विश्वास व भक्ति ही ईसाई धर्म का मूल आधार है।

४—कलीसिया का स्वरूप

भगवान ईसा मसीह का भौतिक शरीर तो उनके साथ स्वर्ग को चला गया परन्तु उनका योगिक शरीर ससार में कलीसिया (चर्च) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह योगिक शरीर वह सम्पूर्ण ईसाई जन समाज है कि जो भगवान ईसा मसीह पर विश्वास करके उनके शरीर से सम्बन्ध स्थापित कर लेती है और उनके बलिदान से प्राप्त पवित्रता का लाभ करती है। इस सम्पूर्ण ईसाई जन समाज के छोटे छोटे भाग भिन्न भिन्न देशों मे हो सकते हैं। उस विशेष स्थान के सीमित क्षेत्र में वहाँ की ईसाई जन समाज ही वहाँ की कलीसिया होगी। यह सम्भव है कि एक स्थान पर ईसाइयों के भी कई सम्प्रदाय हों और अपनी अपनी पृथक समाज बनाते हों। सम्प्रदाय रूप से वे पृथक समाज हैं और उनके लिये पृथक कलीसिया होगी परन्तु समष्टि रूप से भगवान ईसा के एक योगिक शरीर के ही ये सब भाग होंगे और सम्पूर्ण ईसाई समाज ही भगवान का योगिक शरीर या कलीसिया होगा।

इस कलीसिया मे चार गुण होना आवश्यक है। १—एकत्व, २—पवित्रता (होली नेस) ३—व्यापकता व अधिकार, ४—प्रचारत्व (एपोस्टिलिसिटी)।

१—एकत्वः—गिरजे का एकत्व पाच कारणों से होता है। अ—एक ईश्वर की पूजा। ब—एक विश्वास। स—एक सस्कार विधि। च—एक उद्देश्य। द—एक आत्मा। इन पाँचों बातों में यह आवश्यक नहीं कि पूर्णतया एकता हो। एक ईश्वर की पूजा तो सभी सम्प्रदायों में होगी। परन्तु विश्वास और सस्कार के सम्बन्ध में यह सम्भव है कि विविध सम्प्रदायों में थोड़े थोड़े भेद हों। इन भेदों के कारण वह सम्प्रदाय पृथक हो जाँयगे परन्तु जो आवश्यक मूल सिद्धान्त हैं उनको वह सब मानगे इसलिये उनके विश्वास में एकता होगी। यह एकता कलीसिया के एकत्व के लिये पर्याप्त है। उद्देश्य भी सभी सम्प्रदायों का एक है कि भगवान की कृपा पाकर जीवन पवित्र करना और अन्त में भगवान का सामीप्य लाभ करना। इसी प्रकार पवित्र आत्मा की कृपा भी सभी सम्प्रदायों के लिये एक सी आवश्यक है और सभी सम्प्रदाय उसी पवित्र आत्मा द्वारा भगवान को प्राप्त करते हैं।

रोमन कैथोलिक लोग एकत्व के लिये एक बात और आवश्यक समझते हैं कि एक पोप का अधिकार माना जाय जिसने ईसाई जन समाज सचमुच एक धार्मिक राज्य अथवा ईश्वर का राज्य जैसा हो जाय। और उसके सब अवयव दृढता से मिले रह कर सुदृढ एकत्व पैदा करें। परन्तु दूसरे सम्प्रदाय वाले पोप का अधिकार न मान कर

केवल भगवान ईसा ममीह को ही कलीसिया का अधीश्वर मानते हैं। उनका कहना है कि कलीसिया मे केवल जीवित मनुष्य ही सम्मिलित नहीं हैं वरन् मृत मनुष्यो की आत्माए भी, जो भगवान ईसा मसीह पर विश्वास करते हैं और जिनको भगवान ईसा ने अपनी मृत्यु और पुनरुत्थान के समय मे उपदेश दिया था सम्मिलित हैं। यदि पोप जीवित ईसाइयों के अधीश्वर मान भी लिये जॉय तब भी उनका मृत ईसाइयो पर किंचित अधिकार नहीं हो सकता है। और उनके आधीन सम्पूर्ण कलीसिया नहीं हो सकता। इसलिये सम्पूर्ण कलीसिया के अधीश्वर भगवान ईसा हैं और उनके द्वारा ही कलीसिया का एकत्व स्थापित है। इस एकत्व मे सब सम्प्रदायो के ईसाई सम्मिलित हैं क्योंकि सब ही भगवान ईसा के भक्त हैं।

२—पवित्रता:—कलीसिया पवित्र है क्योंकि इसका उद्देश्य मनुष्य को भगवत् कृपा की प्राप्ति द्वारा पवित्र करना है। इसके संस्कार उस भगवत् कृपा के प्राप्त करने के साधन हैं। इसलिये वे पवित्र हैं और पवित्र करने वाले हैं। यह आवश्यक नहीं है कि किसी समय सब ईसाई ही पवित्र आचरण करने वाले हों जभी कलीसिया पवित्र समझा जाय। अच्छे बुरे मनुष्य सब समाजों मे होते हैं। भगवान की कृपा से किन्तु इस समाज मे रहने से पवित्रता प्राप्त करने की सम्भावना है क्योंकि इसके विश्वास व संस्कार पवित्र करने वाले हैं। इस जन समाज को पवित्र करने के लिये स्वयं भगवान ईसा मसीह ने अपना बलिदान दिया है। इसलिये अब यह भी पवित्र ही है।

३—व्यापकत्व (या कैथालिसिटी) व अधिकार:—गिरजे के व्यापकत्व के पाँच लक्षण हैं।

अ—गिरजा सारे संसार के लिये हो। ब—वह पूर्ण ज्ञान सिखाता हो। स—उसका अधिकार सब दर्जों के मनुष्यों पर हो। च—वह शारीरिक व मानसिक सब प्रकार के पापों को दूर करता हो। छ—उसकी शिक्षा में धर्म के सम्पूर्ण अङ्ग हों।

भगवान ईसा ने जो उपदेश दिया है वह किसी एक जाति के लिये नहीं है और न विशेष सम्प्रदाय बनाने के लिये है।

उन्होंने तो व्यापक धार्मिक सिद्धान्तों का उपदेश दिया है। उन सिद्धान्तों के अतिरिक्त जो संस्कार कलीसिया में प्रचलित हैं उनका कारण तो यह है कि कोई समाज भी बिना सामाजिक संस्कारों के नहीं रह सकती। कोई न कोई सामाजिक नियम उसको एक समाज का रूप देने के लिये आवश्यक हैं। फिर उन संस्कारों में कुछ तो ऐसे हैं जो आवश्यक हैं, जिनसे भगवान ईसा में विश्वास दृढ़ होता है। ये तो सभी ईसाइयों के धर्म हैं क्योंकि भगवान ईसा में विश्वास तो ईसाई धर्म का मूल है। शेष जो संस्कार हैं वे इतने आवश्यक नहीं है। इसलिये इन संस्कारों से कलीसिया के व्यापकत्व में अन्तर नहीं पड़ता।

कलीसिया पूर्ण ज्ञान और धर्म के सब अङ्गों का उपदेश करता है। यह सम्भव है किसी विशेष समय पर विशेष सिद्धान्त अव्यक्त हो और फिर आवश्यकता पड़ने पर उसका निरूपण हो परन्तु उसका बीज भगवान ईसा के चरित्र व उपदेश में अवश्य होगा। ईसाई धर्म आवश्यकतानुसार विकसित होता रहता है। इसीलिये न्यू टेस्टामेन्ट में केवल भग-

वान ईसा के उपदेश ही नहीं हैं वरन् उनके चेलों के उपदेश भी हैं। पूर्ण ज्ञान का यह भी अर्थ नहीं है कि पदार्थ ज्ञान और गणित शास्त्र का उपदेश हो। परन्तु धर्म सम्बन्धी पूर्णता होनी चाहिये। धर्म के सब अङ्गों के उपदेश से सब प्रकार के पाप नष्ट होते ही हैं। इसके अतिरिक्त भगवान ईसा की भक्ति का मार्ग ऐसा है कि जो स्वय सब प्रकार के पापों को दूर कर मन को शुद्ध करने वाला है। कलीसिया के लिये कोई मनुष्य छोटा बड़ा नहीं है। सब पर ही उसका एक सा अधिकार है। कलीसिया सभी के धर्म का नियन्ता है।

४—प्रचारत्व:—भगवान ईसा ने अपने शिष्यों को धर्म के प्रचार की आज्ञा दी थी। उन शिष्यो ने भी उन ईसाइयों को, जिनको उन्होंने उपदेश दिया यही आज्ञा दी। इस प्रकार ईसाई समाज को भगवान ईसा की ओर से ही धर्म के प्रचार का अधिकार प्राप्त है। भगवान के उपदेश का प्रचार भी कलीसिया का आवश्यक लक्षण है। इसीलिये अनेक ईसाई समाजों की ओर से ईसाई धर्म प्रचारक सघ कार्य किया करते हैं। प्रचार कार्य का भार विशप लोगों पर होता है जो ईसाइयों के मुख्य पुजारी होते हैं। इन्हीं पर धार्मिक जीवन को निर्मल और सुनियमित बनाये रखने का भार होता है। यही लोग प्रथम प्रचारकों के उत्तराधिकारी के समान हैं।

रोमन कैथोलिक इसका अधिकारी पोप को ही मानते हैं। और पोप से ही फिर दूसरे विशप आदि लोगों को अधिकार मिलता है। प्रथम प्रचारकों के सरदार सन्त पीटर के पोप ही उत्तराधिकारी हैं। अन्य सम्प्रदाय वाले इस बात को नहीं मानते।

कलीसिया को भगवान ईसा मसीह द्वारा इस अधिकार के प्राप्त होने से ही उसमें धर्म के विकास करने की शक्ति प्राप्त हुई है। भगवान ईसा के आशीर्वाद से पवित्र आत्मा सदैव कलीसिया में स्थित रहती है और उसी के बल के सहारे कलीसिया कौंसिल आदि के द्वारा धर्म का निरूपण करता है।

सिक्ख धर्म

१—मुख्य सिद्धान्त

१—ससार का कर्ता धरता ईश्वर है उसी ने दुनिया को बनाया है। केवल एक ईश्वर ही अनादि है और सब वस्तुए उसकी बनाई हुई हैं। वही ससार का पालन करता है और वही लोगों को उनके कामों का फल देता है। ईश्वर सब का मालिक व स्वामी है। उसका हुकुम सब को मानना पडता है। देवता, मनुष्य, राक्षस, असुर पशु सब उसके हुकुम के तावेदार हैं। सिर्फ ईश्वर की पूजा करनी चाहिये। वही सब का मुहाफिज है। ईश्वर निर्विकार है यानी उसमे कभी कोई बुराई नहीं होती। ईश्वर मुनसिफ है। जो जैसा करता है वैसा ही उसको फल देता है। लेकिन जो सच्चे दिल से अपने गुनाह पर पछताता है उसको क्षमा करता है ईश्वर बड़ा दयालु है। वह दया करके पनाह मागने वालों को दया का बल देता है कि जिससे उसका मन पाक हो जाय। लेकिन सच्चे मन से शरण मे जाना चाहिये। ईश्वर सच्चे मन से प्रार्थना करने वाले धर्मात्मा मनुष्य का दुख दूर कर देता है। ईश्वर सर्व शक्तिमान है। ईश्वर सर्व व्यापक और सर्वज्ञ है। उससे कोई बात छिपी नहीं है। वह सब जानता है। वह सब देखता है। वह निराकार है। फिर भी सब के कर्मों को देखता है और उनका फल देता है। दुनिया को पैदा करने और कायम करने वाला है। सब का कर्ता धर्ता

होता हुआ भी हमेशा एक सा रहता है। उसमें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। जो ईश्वर खुश है तो सब ख़ुश हैं। जो वह नाराज हो तो संसार भर के ख़ुश होने से क्या फ़ायदा। इस लिये मनुष्य को चाहिये कि ख़ुदा की पूजा करे, उसी से प्रार्थना करे, उसी की दया की भीख मांगे, और धर्माचरण करे कि जिससे ईश्वर खुश हो।

२—ईश्वर की पूजा बाहरी दिखावट से नहीं होती, तीर्थ यात्रा करने से नहीं होती, किसी जगह नहाने से नहीं होती, ईश्वर की पूजा मन से होती है। मन का साफ करना धर्म से चलना और पाक मन से ईश्वर की प्रार्थना करना और दया की भीख मांगना ही पूजा है। गुरु वाणी का कीर्तन व नाम का जप व स्मरण ही मन को पवित्र करने की विधि है। भगवान का गुणगान और नाम स्मरण ही निरकार की पूजा है। तीर्थ इस लिये करने में कोई हर्ज नहीं है कि पुराने ज़माने में हुए गुरुओं की जगह पर जाकर उन महापुरुषों की याद में माथा टेकें लेकिन बिना मन को साफ किये और धर्म किये सिर्फ तीर्थ करने से कुछ नहीं होता। झूठा तीर्थ करना पाखंड है। इससे ईश्वर खुश नहीं होता। ईश्वर से कोई छल नहीं कर सकता। वह सब के मन की भीतरी से भीतरी बात भी जानता है, इसलिये ईश्वर को ख़ुश करने के लिये मन को साफ करना चाहिये। मन जभी साफ़ होता है कि जब मनुष्य धर्माचरण करता है।

३—सिक्ख धर्म किसी किताब को ईश्वरीय या इलहामी नहीं मानता, और न ईश्वर का अवतार होना ही मानता है। सब किताबें मनुष्य की ही बनाई हुई हैं। धर्म वह है जिसकी तालीम उन लोगों

ने दी हो जिनको ईश्वर का दीदार हुआ है, ऐसे सत्पुरुषों के रहन सहन पाक साफ होते हैं, और उनके चलन के मुआफ़िक़ चलना ही धर्म है। उनके चलन से दुनिया मे सुख व शान्ति फैलते हैं। आख़ीर में मनुष्य को ईश्वर का दीदार भी होता है। दशों गुरू ऐसे सत्पुरुष हुए हैं जिनको ईश्वर का दीदार हुआ था इसलिये उनकी तालीम को मानना धर्म है। सिक्ख यह मानते हैं कि ईश्वरीय ज्ञान गुरुओं के हृदय मे प्रकट हुआ। गुरुओं ने उसका वर्णन अपनी वाणी मे किया है। इसलिये वह वाणी परम आदरणीय है।

४—किसी को ईश्वर का दीदार हुआ है या नहीं इसको जानना बड़ा कठिन है। ईश्वर के दीदार के झूठे दावेदार भी खड़े हो जाते हैं और धर्म क्या है क्या नहीं है, इसके जानने मे झगडा पड़ सकता है।

इसलिये दशवें गुरू महाराज श्रीगोविन्द सिंह जी ने हुकुम दे दिया है कि अब ग्रन्थ साहब को ही गुरू माना जाय। किसी दूसरे गुरू की टटोल करने की जरूरत नहीं है। ग्रन्थ साहब मे ही गुरुओं ने धर्म की शिक्षा दी है और उसी धर्म पर चलने से मनुष्य को ईश्वर का दीदार हो सकता है। इसलिये अब गुरु ग्रन्थ साहब को ही समझना चाहिये। ग्रन्थ साहब की भी गुरू के मुआफ़िक़ इज्जत करनी चाहिये। ग्रन्थ साहब को भी गुरू की जगह पर रख कर उनके सामने ही परमेश्वर की स्तुति करनी चाहिये। ग्रन्थ साहब गुरुवाणी है और गुरू रूप ही है। "वाणी गुरु, गुरु है वाणी विच वाणी अमृत सारे"—श्री आदि ग्रन्थ साहब

५.—गुरुओं की तालीम के सिवाय और कुछ नहीं मानना चाहिये। वही दिन शुभ है जिसको गुरू ने शुभ बताया है। वही चीज पाक है जिसको गुरू ने पाक बतलाया है। इसके सिवाय शुभ अशुभ दिशा शूल अच्छा बुरा दिन ज्योतिष के अनुसार जन्मपत्री बनाना, वगैरा बातो को सिक्ख नहीं मानते। जब ईश्वर ख़ुश हों तो और बातों की क्या जरूरत है। जिस दिन गुरुओं ने दुनिया के उद्धार के लिये जन्म लिया वही दिन शुभ है और वही दिन त्योहार हैं। उन दिनो को गुरुपर्व करके मानना, और खुशी मनानी चाहिये और गुरू के दरबार मे अरदास करनी चाहिये और गुरुवाणी का प्रचार करना चाहिये। जिन जगहो को गुरुओं ने आप रह कर पाक किया है या जिन जगहो को उन्होंने अच्छा बताया है वही तीर्थ हैं। इसके सिवाय सिक्खो को और किसी बाहरी दिखावट की जरूरत नहीं है।

कि जिसके बन्दे हैं उस तक पहुँचने की कोशिश करें और उसकी पूजा करें। सिक्ख धर्म जाति पाति को नही मानता। जिसने ख़ालिस धर्म पर चलना मजूर किया है वही सिक्ख है फिर दूसरी जाति कहाँ से आवे। लोग अपनी अपनी मर्जी और ताकत के मुआफिक तरह तरह के काम करे तो उससे उनकी जाति अलग नही हो जाती, वे सब ही सिक्ख रहते हैं। सब ही सिक्ख एक ईश्वर के बन्दे और भाई भाई हैं, इसीलिये सिक्खो के नाम के आगे भाई का लफ्ज भी लगा रहता है। सिक्ख धर्म मे किसी पुजारी की जरूरत नही है। सिक्ख मन्दिर मे जो ग्रन्थ साहब की सेवा करता है वही ग्रन्थी कहलाता है लेकिन ग्रन्थी होना किसी खास जाति का हक़ नही है। जो भी इसके क़ाबिल हो उसी को यह काम सौंपा जा सकता है। किसी भी सिक्ख रस्म को कोई भी सिक्ख करा सकता है। पिता अपनी पुत्री का विवाह संस्कार आप ही बिना पुजारी के कर सकता है।

८—ऐसे खालिस धर्म के पालन मे मर्द और औरत का भेद नहीं है। स्त्री और पुरुष दोनों को सिक्ख धर्म पर चलने का हक एक सा है। जो काम पुरुष के लिये करना फर्ज है वही काम स्त्री के लिये करना भी फर्ज है। स्त्री और पुरुष दोनों का दर्जा बराबर है। सिक्ख धर्म मे सब सिक्ख सिक्खनी बराबर हैं। औरत व मर्द गृहस्थी के रथ के दोनो पहिये हैं। दोनो पहिये बराबर हैं। और जभी रथ अच्छी तरह चल सकता है। एक पहिया छोटा और दूसरा बड़ा हो तो रथ कैसे चले, स्त्री पुरुष दोनो एक दूसरे को नजात की ओर ले जाने वाले हैं। इसलिये पुरुष के लिये स्त्री सुख देने वाली होती है। और वह उसको

अपने बराबर समझ कर इज्जत करता है। धर्मात्मा औरत अपने पति को भी अपनी खिदमत से वश में कर धर्म पर चलाती है। स्त्रियों को भी अमृत छक कर सिक्खों के पाँच निशान, पच, ककार, रखने का हक है क्योंकि उनका भी पुरुष के बराबर ही दर्जा है।

९—ऐसे खालिस धर्म के सिवाय, जिसकी गुरुओं ने तालीम दी है, सिक्खों का सामाजिक इन्तज़ाम और रहन सहन की देख भाल करने व नियम बनाने के लिये पन्थ ही गुरू है। दशवे गुरू के हुकुम के मुआफिक ऐसे खालिस धर्म को मानने वाला 'खालसा' पन्थ भी गुरू है और सामाजिक जीवन के लिये कायदे बनाने का उसी खालसा पन्थ को हक है। लेकिन खालसा पन्थ भी गुरुओं के बताये हुए धर्म को नहीं बदल सकता। दशवे गुरू तक तो गुरुवाणी और गुरू के व्यक्तित्व का एक ही पुरुष में योग रहा। परन्तु उन्होंने आगे के लिये इनको विभक्त कर दिया। वाणी ग्रन्थ साहब के रूप में और व्यक्तित्व खालसा के रूप में नियत किये गये। पन्थ ग्रन्थ साहब के तावे है। परन्तु ग्रन्थ साहब की आज्ञा का अर्थ पन्थ ही करता है और दोनों की सम्मति से धर्म का निश्चय होता है। खालसा का भी फर्ज है कि उन उपदेशों को माना करे क्योंकि तभी तो उसके सदस्य सिक्ख कहलावेंगे और वह समाज सिक्खों का खालसा पन्थ कहलावेगा।

१०—ऐसे खालिस धर्म के मानने वाले सिक्खों में और दूसरे लोगों में भेद किया जा सके इसलिये कुछ निशान हैं जो प्रत्येक सिक्ख को रखने चाहिये। उनको 'पच ककार' का धारण करना कहते हैं। यह पच ककार यह हैं :—केश, कंघा, कृपाण, लांगे या कछा और

कच्छहरा (एक प्रकार का जाँघिया)। केशो के धारण करने से सिक्ख दूसरे लोगो से झट पहचान लिया जाता है और सिक्खो की जमाअत मज़बूत होती है। केशों के रखने से चेहरे पर वह रुआब आ जाता है कि जिससे मनुष्य भी शानदार मालूम होने लगता है। इस शानदार स्वरूप के ख़्याल से उसका मन भी शानदार और ताकतवर होता है और सिंह के स्वरूप वाला "सिंह" ही हो जाता है। केशों के साफ करने के लिये कंघा जरूरी है। कृपाण निडर होने व स्वाभिमान का निशान है। सिक्ख सिवा ईश्वर के किसी से नहीं डरता। सिक्ख सदैव अपनी व धर्म की रक्षा करने के लिये तैयार रहता है। लोहे का कड़ा पहनने से सिक्ख को यह हमेशा याद रहता है कि दुनिया की दौलत सोने चाँदी को तुच्छ समझे। धर्म पर चलना और धर्म की हिफाजत सब पर लाजिम है। धर्म पालन करते हुए जो कुछ मिले उसी को प्रभु को धन्यवाद देकर लेना चाहिये। धर्म पर चलने मे लोहे के मुआफिक़ पक्का हो जाना चाहिये। और अपने चलन को ऐसा बाँधे रखना चाहिये कि जैसे कड़े के अन्दर कलाई। हाथो को बुरे कामो से हमेशा रोके रक्खे। और कच्छ पहिनने से सिक्ख हर दम चुस्त और मेहनत के लिये तैयार रहता है। आलस्य गुनाह है। सिक्ख आलस्य नहीं कर सकता। जाँघिया धर्म पालन मे सदैव तैयार रखता है। जाँघिया पाक व ब्रह्मचारी का जीवन बिताने मे सिक्ख की सहायता करता है। इन पाँच निशानो का पहिनने का हुकुम दशवे गुरु ने दिया था। वह सब सिक्खों को मानना चाहिये। इसको पन्थ भी नहीं बदल सकता। इन निशानों को दशवें गुरु आप भी रखते थे

इसलिये यह निशान हमेशा उनकी याद दिलाते रहेंगे। चेलों को गुरू के मुआफिक चलना फर्ज़ है। दुखों और कठिनाइयों में भी यह निशान सिक्ख को हिम्मत और अपने गौरव की याद दिलावेंगे। इससे वह सब झेल कर भी धर्म पर पक्का बना रहेगा।

११—ऐसे ही चार नियम हैं जिनको पथ भी नहीं बदल सकता और जिनका हर एक सिक्ख को पूरी तरह से पालन करना चाहिये। तभी वह "सिंह" कहलाने का हकदार है। सच्चा सिंह वही है जो इनका पालन करता है। इनका पूरा पालन न कर सके तो जब तक फिर से अमृत पीकर उनके पालन का पक्का इरादा न कर ले तब तक वह सिंह नहीं हो सकता। वह नियम यह हैं। १—जिबहा किया हुआ मास नहीं खाना। एक झटके मे मारे हुए पशु का ही मास खाना। २—तम्बाकू नहीं पीना, तम्बाकू पीने की हानियाँ सभी जानते हैं। सिक्खों को तम्बाकू का पीना मना है। ३—केश किसी जगह के न काटना। केश काटने से और जल्दी बढ़ते हैं इसलिये केश न काटने से वह बहुत नहीं बढ़ते। ४—दूसरे की स्त्री से व दूसरे पुरुष से व्यभिचार न करना और उनके साथ पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना। यह गुरू के हुकुम हैं। इसलिये गुरू के भक्तों का मानना चाहिये। इनके पालन में कष्ट होना मुमकिन है लेकिन इस वजह से धर्म नहीं छोड़ा जा सकता।

१२—इन नियमों के सिवाय तीन उपनियम हैं जो कि भिन्न भिन्न जगहों में जरूरत के मुआफिक बदल भी जाते हैं। वह यह हैं। १—स्त्रियाँ जेवर नहीं पहनें। यह उपनियम रहतनामों में नहीं है परन्तु इसका सिक्खों में प्रायः रिवाज है। सभी सिक्ख स्त्रियाँ इसका पूरा

पालन नहीं करतीं। यह स्थान स्थान की रीति रिवाज के अनुसार पालन किया जाता है। २—सिर पर पगड़ी बाँधना। कोई कोई स्त्रियाँ भी चादर के नीचे सिर में छोटी सी पगड़ी बाँध लेती हैं। ३—कमाई का दशवाँ भाग धर्म के लिये निकाल देना। सिक्ख टोपी या टोप नहीं लगता। वह हमेशा साफा या दुपट्टा ही बाँधता है। इससे वह और भी अधिक शानदार मालूम होता है।

१३—केश रखने और दूसरे चार ककारों के रखने में भी भेद है। केश कटाने से सिक्ख पतित कहलाता है। जब तक वह फिर से अमृत पीकर प्रतिज्ञा न करे तब तक सिंह नहीं कहला सकता। लेकिन दूसरे चार ककारों के न पहनने से सिक्ख "तनखिया" कहलाता है यानी वह दंड दिये जाने के काबिल तो होता है लेकिन धर्म से पतित नहीं समझा जाता। केश रखना एक और बात का निशान भी माना जाता है और वह है भगवान की मर्ज़ी से चलना। जो चीज कुदरती तौर से बढ़ती हो उसे मनुष्य क्यों काटे। चाहे इसमें उसे तकलीफ हो, लेकिन उस तकलीफ को दृढ़ता से सहन करना भगवान की मर्ज़ी के मुताबिक चलना है। केशों का रखना, साधुता और बड़प्पन का निशान भी रहा है। दूसरे धर्मों के महान पुरुष, गुरु और ऋषि भी दाढ़ी रखते थे। इसलिये केश दूसरे धर्मों से सिक्खों का फर्क ही नहीं दिखाता बल्कि सिक्ख धर्म के दूसरे धर्मों से मेल का भी निशान है।

वह दशों गुरू की स्तुति भी करता है। उन सिक्खों की कीर्ति का गान करता है जिन्होंने पन्थ की बड़ी ख़िदमत की हो। और अब भी पन्थ के सामने जो कार्य है (दुनिया में न्याय और सुख व शान्त का फैलाना) उसकी याद करता है। सब सिक्खों का एक ही तरह से केश रखना उनमें भाईपने का भाव पैदा करता है। चाहे कोई अमीर हो, पढ़ा लिखा विद्वान हो, वे पढ़ा या निर्धन हो, सभी एक से हक वाले एक ही पन्थ के सदस्य हैं। इस पन्थ में वही शामिल होगा जो केश रखने की प्रतिज्ञा पालन कर सके। इससे पन्थ बहादुरों का पन्थ बना रहेगा। हर एक सिक्ख को यह याद रखना चाहिये कि वह ऐसे पन्थ का सदस्य है। हर सिक्ख अपने आप को सवा लाख के समान समझता है। पन्थ ही गुरू गोविन्द सिंह का स्वरूप है। उसका सदस्य होकर प्रत्येक सिक्ख अपने में गुरुगोविन्द सिंह की शक्ति का अनुभव करता है। सिक्ख धर्म में सिर्फ़ अपना पाक रहना व भगवान की पूजा करना काफी नहीं है। सिक्ख के सामाजिक जीवन में भी कोई दिखाव व कुरीतियाँ नहीं होनी चाहिये।

कमाना ही धर्म नहीं है। परन्तु वह धन धर्म से कमाया जाय और धर्मानुसार ही खर्च किया जाय। सिक्ख के लिये भीख मागना अथवा पूजा का धान खाना वर्जित है। सिक्खों का जीवन सुखमय होता है। भगवान जिस हालत में रखते हैं वे उसी में सुखी व सन्तुष्ट रहते हैं लेकिन दूसरों की खिदमत के लिये हमेशा तैयार रहते हैं।

१६—सिक्ख धर्म छूतछात को नहीं मानता। मन लोभ से, जबान झूठ बोलने से, आँख दूसरे के धन या स्त्री की ओर इस इच्छा से देखने से कि वह उसे मिल जाय तो अच्छा हो, और कान दूसरे की बुराई सुनने से, नापाक होते हैं। इन्हीं कर्मों से मनुष्य दोजख को जाता है (आसादीवार १८)। जिनके मन अधर्म के कार्यों से गन्दे हो गये हैं उनकी बाहरी सफाई से क्या फायदा। जब हृदय मे झूठ और बेईमानी भरी हो तो मुँह धोने से सफाई नहीं होगी। कोई किसी को छूकर क्या नापाक करेगा जब उसका मन पहले से ही नापाक है। गुरू अमरदास का यह नियम था कि हिन्दू मुसलमान जो कोई भी जाति के मनुष्य उनके दर्शन करने आते थे उनको पहले "लगर" मे सब के साथ एक ही पक्ति मे बैठ कर खाना पडता था। जो जाति का भेद करते थे उनमे वे मिलते भी नहीं थे। लगर में खाना सिक्ख धर्म का अब भी वैसा ही खास रिवाज है। सब सिक्ख भाई हैं, एक धर्म के हैं उन सबको साथ बैठ कर खाने का हक है चाहे वे रोजी के लिये कोई भी काम करते हों।

१७—लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि जिस्म को गन्दा रक्खा जाय। पञ्च ककारों मे कघा पाकीज़गी का निशान है। मनुष्य को अपना

शरीर ताक़तवर व साफ बनाना चाहिये। जितने मनुष्य हैं सब ईश्वर के स्वरूप हैं। भगवान ही इन स्वरूपों मे विराजते हैं (आनन्द) फिर भला उस जिस्म को जिसमें भगवान हों, जो भगवान का मन्दिर हो उसको नापाक कैसे रहने दिया जाय।

इस जिस्म की भगवान की ख़िदमत करने के लिये हिफाजत करनी चाहिये। एक बार गुरू अमरदास एक घोड़े पर चढे जा रहे थे। रास्ते में एक दीवार के पास से वे जल्दी से निकल गये। इसकी वजह पूछने पर उन्होंने कहा कि मनुष्य को जिस्म की हिफाजत करनी चाहिये जिससे कि वह उस जिस्म से धर्म की हिफाजत कर सके। लेकिन जिस्म की हिफाजत करने में डरपोक होना गुनाह है। धर्म के कार्य के लिये हमेशा तैयार रहना चाहिये। कृपाण निर्भयता का निशान है। पापी को ही भय होता है, धर्मात्मा हमेशा सुखी व निडर रहता है। भगवान न्याय-कारी हैं, सत्य के स्वरूप हैं फिर किसी से डरने की क्या वजह (श्रीराग ४) सिक्ख बड़ी से बडी कठिनाई में शान्त और निडर रहता है। "वही मनुष्य बुद्धिमान है जो आप किसी से नहीं डरता और जो दूसरों को नहीं डराता।"

१८—सादा जीवन ही सिक्ख का धर्म है। सिक्ख को शराब नहीं पीना चाहिये (सिरीरागु ३)। रहन सहन सादा और काम अच्छे व ख्याल ऊंचे रखने चाहिये। गुरू अमरदास कभी अपने पास एक जोड़ा कपड़े से ज्यादा व एक दिन के खाने से अधिक नहीं रखते थे। सिक्ख औरतें भी ज़ेवर पहनना अच्छा नहीं समझतीं। सिक्ख का ज़ेवर तो [illegible] और [illegible] है।

१६—सिक्ख निडर ताक़तवर और पन्थ व धर्म की हिफ़ाजत व दूसरों की ख़िदमत में लगा रहने और सब जीवों पर दया करने वाला है। गुरू हरिराय अपने कपड़े सिकोड़ कर चला करते थे कि जिससे उनके कपड़ों से पेड़ों के फूल भी न गिरने पावें। "नानक जीवन का लाभ यही है कि उनकी सत्संगति हो जो ताक़तवर होते हुए भी नम्र और दयालु हैं।" दया वही कर सकता है जो बलवान हो। निर्बल का डर कर किसी काम को करना दया नहीं है। और न स्वार्थ के लिये किया हुआ कार्य दया है। दया तो बिना किसी बदले की इच्छा के ख़िदमत करने के लिये की जाती है। सिक्ख का जीवन ही पन्थ की और दुखियो की ख़िदमत के लिये है। भगवान उसी पर दया करते हैं जो दुखियो पर दया करता है।

२०—ईश्वर निराकार है इसलिये उसकी कोई मूर्ति नहीं है। ईश्वर सर्वव्यापक है इसलिये उसकी कोई ख़ास रहने की जगह नहीं है। वह सब जगह हमेशा मौजूद है। इसलिये सिक्ख किसी मूर्ति की या क़ब्र वग़ैरह की पूजा नहीं करता। ग्रन्थ साहब की पूजा धूप व सुगन्धित वस्तुओं से इसलिये की जाती है कि गुरू वाणी है व सिक्ख धर्म की बुनियाद है। अब भी धर्म का उपदेश उसी से हासिल होता है इसलिये उसकी गुरू के समान इज्जत की जाती है लेकिन ग्रन्थ साहब की भी ईश्वर समझ कर पूजा नहीं की जाती। सिक्ख धर्म सिर्फ निराकर निर्विकार परमेश्वर की पूजा का उपदेश देता है। वह परमेश्वर सब जगह है उसके लिये किसी मन्दिर की ज़रूरत नहीं है।

२१—लेकिन श्रीग्रन्थ साहब को अच्छी तरह रखने के लिये जगह

की जरूरत है। वही जगह सिक्खों का मन्दिर है जहाँ ग्रन्थ साहब पधारे हैं। वहाँ सब सिक्ख मिल कर उनकी स्तुति करते हैं, पाठ करते हैं और विवाह वगैरह रस्में करते हैं। इसके सिवाय सिक्खों को मिल कर एक साथ प्रार्थना भी करनी चाहिये कि जिससे उनमें एकता और मेल बना रहे। ऐसी मिल कर पूजा त्यौहारों पर जैसे गुरू के जन्म दिन पर होनी ज़रूरी है। इसके अलावा उस जगह के रहने वाले सिक्ख चाहे जब सुभीते से मिल कर पूजा कर सकते हैं। ग्रन्थ साहब का पाठ कम से कम हफ्तेवार तो होना ही चाहिये। प्रत्येक सिक्ख को गुरू ग्रन्थ साहब का प्रति दिन दर्शन करना चाहिये।

२२—मिलकर पूजा के सिवाय सिक्ख को घर पर सवेरे शाम को और सोते वक्त पूजा करनी चाहिये। मनुष्य को धर्म में लगाये रखने के लिये तीन तरीके हैं। एक तो गुरुवाणी का पाठ, दूसरा साधु संगत (साधु संगत का मतलब किसी सन्यासी की संगति का नहीं है बल्कि इसमें सब धर्मात्मा सिक्खों से मतलब है। धर्मात्मा सिक्ख ही साधु है) तीसरा भगवान की याद। भगवान के नाम अनेक हैं। उनको राम, हरि, खुदा सब कहते हैं। एक ओंकार सत् नाम है, और गुरू का दिया हुआ शब्द "वाह गुरू" सदैव याद रखना चाहिये। यह मन को शुद्ध और शान्ति देने वाला है। सिक्खों को आपस में प्रणाम भी वाह गुरू जी की खालसा, 'वाह गुरू जी की फतह" या सत् श्री अकाल कह कर करना चाहिये। इससे उनको हमेशा ईश्वर यानी अकाल पुरुष की (जो अजन्मा है, जिसका कभी अन्त नहीं होगा, जो काल रहित है) याद रहेगी।

२३—जीव अपने कर्मों के मुआफिक़ फल पाता है। जैसा जो करता है वैसा ही भरता है। और जब तक धर्म करने से नजात नहीं हो जाती जीव बार बार जन्म लेता रहता है। लेकिन महान आत्माए नजात के पास पहुँच कर भी ससार के हित के लिये जन्म लिया करती हैं। जैसे कि गुरू गोविन्दसिंह जी ने दुनिया के कल्याण के लिये फिर जन्म लिया था।



पारसी धर्म

१—मुख्य सिद्धान्त

पारसी एक ईश्वर में यक़ीन करते हैं। उस ईश्वर का नाम भगवान अहुरमजदा है। ईश्वर के लिये देव शब्द का कभी इस्तैमाल नहीं करते। पारसी धर्म में देव बुरे स्वभाव वाले जिन्न को कहते हैं। भगवान अहुरमजदा का न आदि है न अन्त है, वे करोड़ों सूर्यों के प्रकाश के समान, रहीम, कादिर मुतलक, हाजिर नाजिर न्यायकारी, और अनन्त भंडार वाले हैं। भगवान अहुरमज़दा ने ही दुनिया को बनाया है भगवान अहुरमजदा दुनिया के मालिक और हाकिम हैं। [illegible] भगवान अहुरमजदा मालिक को ही सच समझ कर उनकी पूजा करनी चाहिये।

दोशक्तियां—भगवान अहुरमजदा से ही पहले दो ताक़तें पैदा हुईं। एक का नाम 'स्पेन्तो मेन्युष' और दूसरी का अंग्रोमेन्युष है। स्पेन्तोमेन्युष दुनिया को बनाने वाली व बढ़ाने वाली ताक़त है। और अंग्रोमेन्युष नष्ट करने वाली है। स्पेन्तोमेन्युष से अच्छी बातें व पुण्य होता है और अंग्रोमेन्युष से पाप होता है। इन्हीं दोनों ताक़तों के मिलने से [illegible] बना है। स्पेन्तोमेन्युष प्रकाशवान और पाक है।

भगवान अहुरमज़दा ही हैं। इन दोनों शक्तियो को कभी दो फिरिश्तों के स्वरूप में भी बयान किया जाता है। अग्रोमेन्युप तो शैतान का रूप है जो लोगो से पाप कराता है और बुराई फैलाता है। शैतान को अकेमयनो कहते हैं। और स्पन्तोमेन्युप को वोहुमनो यानी पाक मन कहते हैं।

अन्य फिरिश्ते:—भगवान अहुरमजदा दुनिया का प्रबन्ध छे ख़ास फिरिश्तों के जरिये करते हैं। उनके नाम यह हैं। १—वोहुमनो या वहमन, यह फिरिश्ता दुनिया के सब जीवों की जिन्दगी की फिहाजत करने और अच्छे विचारों और पुन्य कर्मों का कराने वाला है। २—आशावहिश्त, या अर्देबहिश्त—यह फिरिश्ता रोशनी को कायम रखने और फैलाने वाला और दुनिया में खुशी व आराम फैलाने वाला है।

३—क्षात्रवीर्य या शहरीवार, यह फिरिश्ता धन दौलत का मुहाफिज है और दुनिया में रुतबे का देने वाला है।

४—स्पन्त अरमेत:—या स्पन्दारमद, यह फिरिश्ता पाकीज़गी और सफाई फैलाने वाला है और भगवान की भक्ति मनुष्य के मन में पैदा करता है।

५—होरवतात:—या खुरदात, यह फिरिश्ता दुनिया मे धन धान्य को बढ़ाता है। लोगों के दुख दूर करता है।

६—अमेरतात —या अमरदाद, यह फिरिश्ता अमृत देने वाला है।

दूसरे नाम पहलवी भाषा के हैं और अब वही बोले जाते हैं। लेकिन जन्द भाषा में पहले नाम हैं।

मनुष्य:—मनुष्य में दो तरह की चीजों से मिल कर जीवन बना है और इसीलिये उसके जीवन के दो रूप होते हैं। पहला तो जिस्मानी। इनको पराहु या अस्त्वत कहते हैं। दूसरा आत्मिक इसको दैत्य या मनः कहते हैं।

मनुष्य में दो तरह की बुद्धियां होती हैं। पहली का नाम असनोखातु है। यह कुदरती बुद्धि है, जो मनुष्य को जन्म के साथ मिलती है। यही मनुष्य के अन्तर की आवाज है जो उसे बुरा काम करने से रोकती है और चेतावनी देती है। जब मनुष्य इसकी बात नहीं सुनता और इसकी आवाज़ की ओर से बहरा हो जाता है तो पाप करने लगता है। दूसरी बुद्धि गैसोश्रुतोखातु कहलाती है। इसका मतलब है जो कानों से सुन कर पैदा हो। यह बुद्धि दुनिया में तालीम के ज़रिये इल्म हासिल करने से मिलती है।

दो जीवन:—इस दुनिया के जीवन के पीछे दूसरा जीवन और है जो बहिश्त या दोज़ख़ में अपने कामों के मुआफ़िक़ मिलता है। मनुष्य के मरने पर उसका शरीर नष्ट हो जाता है लेकिन जब भगवान अहुरमज़्दा क़यामत के दिन जीवों को उनके कर्मों के मुआफ़िक़ फल देते हैं तो सर्व शक्तिमान भगवान अहुरमज़्दा की इच्छा से मन रूहों का पहला शरीर बन जाता है। बहिश्त को पारसी धर्म में गरुथमान और पारसी भाषा में गरूथमान कहते हैं। गरुथमान का मतलब प्रार्थना का है। बहिश्त को गरुथमान इसलिये कहते हैं कि यहां फ़रिश्ते हमेशा भगवान अहुरमज़्दा की स्तुति करते रहते हैं। इसका दूसरा नाम बहिश्त अर्थात् सब से अच्छी ज़िन्दगी भी है। यही नाम ज्यादा

मशहूर है। दोज़ख का नाम द्रुजमान है, जिसका मतलब है गिरने की जगह। इसी को दुज़न्ह भी कहते हैं जिसका फ़ारसी भाषा में स्वरूप दोज़ख है। और अब यही नाम मशहूर है। जब रूह का शरीर भगवान अहूरमज़दा की इच्छा से ज्यो का त्यों हो जाता है तो वह मनुष्य चिन्हवत् के पुल पर होकर भगवान अहुरमज़दा के पास बहिश्त में जाने लगता है। जो धर्ममात्मा होते हैं वे तो बहिश्त में पहुँच जाते हैं और जो पापी होते हैं वे पुल पर से दोज़ख में गिर पड़ते हैं। बहिश्त लाल हीरों से जडा हुआ है। वहाँ करोड़ो सूर्यो के समान रोशनी है। बड़े ख़ूबसूरत बाग़ हैं। जिनमें सुन्दर नहरे बह रही हैं और अनेक सुन्दर पक्षी मीठे मीठे बोल रहे हैं। चारो ओर ख़ुशबू फैल रही है। यहा वे रहते हैं जो एक ईश्वर की पूजा करते हैं और धर्म पालन करते हैं।

त्रिरत्न:—पारसी धर्म के मुआफिक़ धर्म पालने के लिये तीन बातें जरूरी हैं, १—हुमति या सुमति, २—हुकहत अर्थात् सुकहत, ३—हुवर्तन अर्थात् सुवर्तन। वह मनुष्य धर्मात्मा है जिसकी बुद्धि अच्छी है। जो हमेशा धर्मानुसार ही वचन बोलता है और जो वर्ताव मे धर्मात्मा है। मन, वचन, कर्म से धर्म पालन करने से ही धर्म का पूरा पालन होता है। धर्म पालन से व्यक्ति को भी सुख व शान्ति मिलती है और समाज को भी। धर्म पालन में लोग जितनी कमी करेंगे उतनी ही समाज मे अशान्ति होगी। और समाज की अशान्ति से व्यक्ति भी दुखी व अशान्त होंगे। नर्क से बचने के लिये सिवाय धर्म पालन के और कोई रास्ता नहीं है। पारसियो की एक धर्म पुस्तक अर्दाये वीराफ़ में लिखा है कि मनुष्य की दुनिया की ज़िन्दगी

थोड़े दिन की है लेकिन उसका बहिश्त या दोजख का जीवन बहुत दिनों का है। इस दुनिया में सफर करते वक्त मनुष्य तोशा बांधता है कि भूखा न रहे। लेकिन दूसरी दुनिया को जाने में पुण्य कर्मों का तोशा नहीं बांधता कि जिससे दोजख की आग में न जले। अगर यह पहले ही समझ में आ जाय तो धर्म पालन करने से दुनिया में भी सुख मिले और मरने के पीछे भी बहिश्त मिले। भगवान के यहाँ बड़े छोटे और धनी गरीब का फर्क नहीं है। वहाँ तो गुनहगार और धर्मात्मा का फर्क है।

पाप या गुनाह:- मनुष्य को पाप से बचने के लिये बहुत होशियार रहना चाहिये। किसी को मार डालना, जहर दे देना, धोखा देना, बेचने में चीज कम तोलना या नापना, और झूठ बोलना, अपने वचन का पालन न करना, दूसरे की बुराई करना और झूठे मनुष्य की तरफदारी करना, दूसरे की चीज ले लेना रिश्वत लेना, किसी की मजदूरी मार लेना, धर्मादा के धन को अपने काम में लाना, धर्म को छोड़ देना, राजविद्रोह, अपनी स्त्री का पालन न करना, अथवा स्त्री का अपने पति को छोड़ देना, बाल बच्चों का पालन न करना, लालच, [illegible], बदनामी, गरूर, ईर्षा, यह सब पाप हैं जिनसे सब मनुष्यों को बचना चाहिये।

१—नदी या तालाब के पानी में खड़े रह कर नहाना या कपड़े धोना कि जिससे वह पानी गन्दा हो जाय। २—पानी या आग में गन्दी चीजे फेंकना। ३—किसी नदी के पुल को नष्ट करना। ४—खाते खाते बाते करना। ५—आग को बुझा देना। ६—ऐसे स्नान घर में नहाना जहाँ सब लोग नहाते हैं। ७—सिगरेट हुक्का वग़ैरा पीना क्योंकि इससे पाक अग्नि मुह से लगती है। इनके सिवाय भेड व बकरी, गाय, भैंस को मारना या उनको भूखे रखना या पीटना, किसी मृतक शरीर को अकेले ले जाना, जो नाज बीज के लिये हो उसको भोजन में खा जाना और मेहमान की ख़ातिर न करना या जो चीज मेहमान को दी जाय उसके दाम मागना, रोना, झाकना, दुख देना, मूर्ति पूजा करना, भगवान अहुरमजदा मे यकीन न करना, यह सभी पाप हैं।

पुण्यः—इसी प्रकार सच बोलना, सख़ावत, पाकीजगी, बड़ो का हुकुम मानना, पढाना, दान देना, जिनमे लड़ाई हो गयी हो उनमे मेल करा देना, धार्मिक यज्ञ का करना. भगवान और धर्म की सेवा के लिये अपने आप को अर्पण कर देना, जल व अग्नि को पाक रखना, दुख देने वाले जानवरो को मार डालना, नहर बावडी वगैरा खुदवाना, पुण्य कर्म हैं जिनमे भगवान खुश होते हैं और बहिश्त मे जगह देते हैं।

औरतो के हकः—पारसियो मे औरतो के धार्मिक हक मर्दों के समान ही हैं। वह पुजारी तो नहीं होती लेकिन पाक होकर मर्दों के समान ही पूजा कर सकती हैं। जनेऊ भी पहनती हैं। जिस तरह म

हमेशा टोपी पहने रहते हैं वैसे ही स्त्रियाँ "माथा बन्द" पहने रहती हैं क्योंकि पारसियों में सिर को खुला रखना बुरा समझा जाता है। पारसी स्त्रियाँ हिन्दुओं के समान चूड़ियाँ भी पहिनती हैं। यह उनके विवाहित होने का निशान होता है।

—:०:—

२—पारसियों की पूजा विधि

सूर्य और अग्नि का महत्वः—अग्नि प्रकाशवान है, पवित्र है, इसमें यदि नापाक चीज भी डाल दी जाय तो वह भी जल जाती है। लेकिन आग अपवित्र नहीं होती। अग्नि में काम करने की ताकत है। अग्नि दुनिया का बहुत भला करती है। इन्सान का जीवन ही इसके आसरे है। अग्नि सब जगह में है। इसलिये अग्नि को परम प्रकाशवान, सर्व शक्तिमान, परम पवित्र, परम दयालु व परम उदार, सर्व व्यापक भगवान अहुरमजदा का निशान माना जाता है। पारसी जब पूजा करता है तो अग्नि या सूर्य के सन्मुख करता है। पूजा के समय में अग्नि या सूर्य की पूजा नहीं करता। पूजा तो भगवान अहुरमजदा की करता है। परन्तु सूर्य व अग्नि उसको भगवान अहुरमजदा के गुणों की याद दिला देते हैं। सूर्य को पारसी धर्म में मित्र और मेहर भी कहते हैं।

आर्यों का जन्म स्थान:—पारसियो के पूजागृहों अथवा मन्दिरो में कोई मूर्ति नहीं होती। वरन् एक प्याले में पवित्र अग्नि होती है। पारसी कहते हैं कि अग्नि का यह महत्व आर्य जाति में जभी से चला है जब कि आर्यजाति अपने जन्म स्थान में थी। आर्यमनवीजो को आजकल अजरबीजान या अरमीनिया कहते हैं। वहाँ से आर्य जाति दो भागों में बट गई है। एक तो वह जो फ़ारिस देश में रह गई और पारसी कहलाये। और दूसरे वह जो भारतवर्ष में आये और हिन्दू कहलाये। पारसियो का कहना है कि आर्यमनवीजो का ही नाम आर्यवर्त है।

अग्नि को पवित्र करने की विधि:—यों तो आग हमेशा पाक है। फिर भी पूजागृहों मे जो अग्नि रक्खी जाती है उसको ख़ास तरीके से पाक किया जाता है। मामूली अग्नियों में वह सब से पाक मानी जाती है जो बिजली गिरने से पैदा होती है। इसलिये पारसी लोग हमेशा इस बात का ध्यान रखते हैं कि अगर किसी पेड पर बिजली गिरे तो उसकी अग्नि को लेकर और पाक करके मन्दिर मे रक्खे। जब कोई अग्निमन्दिर बन जाता है तब जगह जगह मे तरह तरह से जलाई हुई अग्नि लाकर अलग अलग प्यालों में रखी जाती है। फिर हर एक प्याले के ऊपर पुजारी एक धातु पीतल आदि, की चलनी लेकर खडा होता है। उस चलनी मे दोनों ओर पकडने को मूठ होते हैं। चलनी के ऊपर चन्दन के छोटे छोटे टुकडे रखे जाते हैं। चलनी प्याले से इतनी ऊंची रखी जाती है कि प्याले की अग्नि की लोय चलनी से न लगने पाये। इस प्रकार प्याले की अग्नि की गर्मी से ही उन चन्दन के टुकडों मे आग

लग जाती है। जब वह अच्छी तरह से जलने लगती है तो उनको एक थाले में रख कर उन पर दूसरी चलनी में चन्दन के टुकड़े रख कर इसी तरह आग जलाई जाती है। इस तरह जब नौ बार आग जला ली जाती है तब वह अग्नि मन्दिर में रखने के लायक़ पाक होती है। पहले जितनी तरह की आग लाई गई थीं सब को इस तरह पाक किया जाता है। जब सब पाक हो जाय तो उन पाक की हुई अग्नियों को एक बड़े थाले में जमा करके वेदी के ऊपर मन्दिर में रखा जाता है। पुजारी इस बात का ध्यान रखते हैं कि यह अग्नि बुझने न पावे।

पूजा के पाँच समय:—पारसी के लिये पूजा करने को किसी वक्त की मनाही नहीं है। हमने खुर्द अवस्ता का हाल लिखने में बता दिया है कि दिन रात के सब वक्तों के लिये अलग अलग प्रार्थनाएं बनी हैं। अग्नि मन्दिर में पूजा करने के सिवाय पारसी घर पर भी धार्मिक पुस्तकों का पाठ कर सकता है। और भगवान की स्तुति या स्मरण कर सकता है। धर्मात्मा पारसी सदैव भगवान की याद करते रहते हैं। अग्नि मन्दिर में भी प्रत्येक पारसी जब चाहे जाकर पूजा कर सकता है। फिर भी पाँच समय अच्छे समझे जाते हैं। सवेरे, दुपहर, तीसरा पहर, शाम और आधी रात।

पूजा कौन कर सकता है:—पारसियों में पूजा करने का व धर्म [illegible] पढ़ने का अधिकार औरतों को भी मर्दों के ही बराबर है। लेकिन [illegible], [illegible], यस्न और आफरीगान, पारसी पुजारी ही पढ़ सकते हैं। [illegible] खुर्द अवस्ता के बाकी भागों को सब पारसी पढ़ सकते हैं।

[illegible] "अथरवन, मूबद, दस्तूर, आज़र, जो अथरवन का [illegible] कहते हैं।

पारसी पुजारीः—पारसी पुजारियों की कोई जाति नहीं होती। कोई भी योग्य और नियमानुसार दीक्षित किया हुआ मनुष्य पुजारी हो सकता है। लेकिन भारतवर्ष के पारसियो मे अब ऐसा रिवाज हो गया है कि पुजारियों की एक जाति बन गई है। पुजारी का लड़का ही पुजारी बन सकता है। अगर वह पुजारी न बनना चाहे तो वह कोई दूसरा काम कर सकता है। कोई पुरुष जो पुजारी का लड़का नहीं है पुजारी नहीं बन सकता। पुजारी दो दर्जों के होते हैं। एक तो "नावर" कहलाते हैं और दूसरे "मरातब" पाये हुये पुजारी कहे जाते हैं। नावर पुजारी विवाह, जनेऊ करा सकता है व आफरीगान पढ सकता है परन्तु बनदीदाद, यस्न नहीं पढ सकता और न किसी नये पुजारी को दीक्षित कर सकता है। परन्तु जिस पुजारी ने मरातिब का दर्जा पा लिया होता है वह सब काम कर सकता है।

बरेशनुमः—नावर पुजारी बनने के लिये भी यस्न, विसपरद्, पाँचों गह, पाँचो न्यायेश और कुछ यश्तो का ज्ञान हासिल कर लेना जरूरी है। इसके पीछे बनने वाले को बरेशनुम् की रस्म करनी पड़ती है। बरेशनुम् मे पहले तो साधक गोमूत्र से तीन बार नहाता है फिर अपने जिस्म के धूल या मिट्टी से तीन बार साफ करता है। फिर तीन बार पानी से नहा कर वह अग्नि मन्दिर में जाकर नौ दिन तक भजन पूजा में ही वक्त बिताता है। इस वक्त वह किसी से नहीं छू सकता। नावर अग्नि, जल, व लकड़ी को नहीं छू सकता। चौथे व सातवें और दसवें दिन वह फिर गोमूत्र और पानी से नहाता है। दशवें दिन उसके नियम पूर्ण हो जाते हैं। और वह सब लोगों मे मिलता जुलता है। इस तरह

दो बार बरेशनुम् की विधि का पालन करके फिर छः दिन के लिये अपने घर ही में एकान्त में बैठ कर भजन करता है। सातवें दिन वह अग्नि मन्दिर में जाता है। वहाँ छः दिन पहले से दो पुजारी यज्ञ करते रहते हैं। बिना छः दिन तक यज्ञ किए उनको भी नये पुजारी के दीक्षित करने का हक़ नहीं होता। सातवें दिन प्रार्थी के माता पिता इष्ट मित्र आदि सब अग्नि मन्दिर में जमा होते हैं। यज्ञ करने वाले दोनों पुजारियों में से एक प्रार्थी का हाथ पकड़ कर बड़े पुजारी के सामने खड़ा होता है और मुख्य पुजारी तथा सारी समाज से पूछता है कि यह मनुष्य पुजारी होना चाहता है। आप लोग इसको मंजूर करते हैं या नहीं। जब कोई कुछ नहीं कहता तो मुख्य पुजारी उस प्रार्थी को दीक्षित करने की मंजूरी दे देता है। फिर वह पुजारी व नए प्रार्थी यज्ञशाला में जाकर यज्ञ करते हैं। चार दिन तक ये दोनों यज्ञ करते रहते हैं। तब उस प्रार्थी को नावर का दर्जा हासिल हो जाता है।

जैन धर्म

१—सम्यग्दर्शन

सम्यग्दर्शन जीव का बन्धन किस प्रकार होता है और उसका मोक्ष किस प्रकार होता है इसको अच्छी तरह जान कर विश्वास करने को कहते हैं। इनको जानने के लिये नौ तत्वों का जानना आवश्यक है। इनको अच्छे प्रकार समझने से सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है। वह तत्व यह हैं:— १—जीव, २—अजीव, ३—आस्रव, ४—पुण्य, ५—पाप, ६—बन्ध, ७—संवर, ८—निर्जरा, ९—मोक्ष।

१—जीवः—जीव प्रथम दो प्रकार के होते हैं। एक स्थावर दूसरे त्रस। स्थावर जीव पाँच प्रकार के होते हैं। १—पृथ्वी कायिक, २—जल कायिक, ३—अग्नि कायिक, ४—वायु कायिक, ५—वनस्पति कायिक। त्रस जीव चार प्रकार के होते हैं। १ दो इन्द्री वाले २ तीन इन्द्री वाले, ३ चार इन्द्री वाले, ४ पाँच इन्द्री वाले।

स्थावर—जीव पृथ्वी कायिक, जल कायिक आदि से यह प्रयोजन नहीं है कि वे पृथ्वी व जल में अलग जीव हों, वरन् इनका अर्थ यह है कि पृथ्वी ही स्वयं जिन जीवों का शरीर है वे पृथ्वी कायिक हैं इसी प्रकार जल, अग्नि व वायु तथा वनस्पति कायिक जीव हैं। इनमें एक इन्द्री के जीव होते हैं। जिनके केवल स्पर्श इन्द्री होती है। इसीलिये आज कल जैन साधु जिन्हें ढुंढिया कहते हैं, मुख के सामने कपड़ा

[illegible]मने हैं कि जिनसे उनके मुख के द्वारा वायु कायिक जीवों को कष्ट न हो। सामायिक करते समय शरीर को हिलाना डुलाना मना है। इसने एक तो ध्यान में विघ्न नहीं होता दूसरे व्यर्थ को वायु कायिक जीवों को दुख नहीं होता।

त्रस जीवः—सब बराबर इन्द्रियों के नहीं होते। जैसे लट, केंचुआ आदि के स्पर्श और रसना दो इन्द्रिय होती हैं। चींटी तीन इन्द्रिय होती हैं। उनके स्पर्श, रस, अर्थात् स्वाद व सूंघने की इन्द्रिय हैं। परन्तु सुनने की इन्द्रिय नहीं है। कहते हैं कि मक्खी व भौरे में देखने की इन्द्रिय भी होती हैं परन्तु सुनने की इन्द्रिय उनमें भी नहीं होती। यह चार इन्द्रिय के होते हैं, और पशु, पक्षी, मनुष्य आदि में तो पांचों इन्द्रियां होती हैं। यह पांच इन्द्रियां स्पर्श, सूंघना, सुनना, देखना और स्वाद हैं। इनमें भी जिनके मन भी होता है उनको सन्नीजीव, 'जिनके मन' नहीं होता उन्हें असन्नी कहते हैं। जीवों का विभाग [illegible] [illegible] होता है।

रहित। रूपरहित अजीव तत्व चार हैं धर्म, अधर्म आकाश, काल। अधर्म का अर्थ पाप नहीं है। यहाँ पर धर्म का अर्थ पुण्य नहीं है। धर्म उसे कहते हैं कि जो जीव व पुद्गल तत्वों की स्वाभाविक गति को चलाये रखे और अधर्म उसको कहते हैं जो उसे ठहराने में सहायक हो। इसी प्रकार जो तत्व जीव पुद्गल आदि समस्त तत्वों को अवकाश दे उसे आकाश कहते हैं और जो उनके दशा परिवर्तन में सहायक हो उसे काल कहते हैं।

३—आस्रव:—जीव में क्रिया (परिस्पन्दन) होती रहती है। इसी के परिणाम से कर्म पुद्गल परमाणु जीव में लगकर बन्धन करते हैं। जीव की इस क्रिया के परिणाम स्वरूप कर्म पुद्गल के लगने को ही आस्रव कहते हैं। इस आस्रव के होने के कारणों के अनुसार मुख्य पाँच प्रकार हैं। १—मिथ्यात्व, २—अविरत, ३—प्रमाद, ४—कषाय, ५—योग।

ो कषाय कहते हैं। यह कषाय चार प्रकार के होते हैं। क्रोध, मान, ाया और लोभ। क्रोध में मनुष्य भला बुरा सब भूल जाता है। उसे उसका ज्ञान पहले से अधिक ढक जाता है और वह पाप करने गता है। यही हाल लोभ का है। मान या अभिमान से भी मनुष्य प पुण्य की परवाह न करके अपनी मान रक्षा करने का प्रयत्न करता। उसे वही ठीक मालूम होता है जिसमें उसका अहंकार बना रहे। इसे भी जीव का स्वाभाविक गुण अधिक ढक जाता है। माया से ोजन चालाकी, धोखा, पाखंड से है। माया के वश होकर लोग सत्य बोलते हैं। इस प्रकार यह चारों भाव कषाय हैं और सब पापों जड़ हैं।

यह कषाय के भाव भिन्न भिन्न समय पर भिन्न भिन्न लोगों में भिन्न ्न मात्रा में उदय हो सकते हैं। यदि उनका तीव्र उदय हो तब तो ुण्य पाप करता है। पर यदि तीव्र उदय न हो तो वह पाप तो नहीं रता लेकिन कोई पुण्य कर्म भी नहीं कर पाता। यदि कषाय इसने भी म मात्रा में उदय हो तो गृहस्थी के धर्म पर थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ता। और यदि इनका उदय अति मन्द हो तो उसने व्रत आदि के ालन में विघ्न नहीं पड़ता परन्तु मन कुछ दूषित सा रहता है।

यदि असत्य ज्ञान सम्बन्धी पदार्थ के निमित्त से हो तो असत्य योग कहलाता है।

प्रमादः—जब हम भूल से या वेपरवाही से कोई क्रिया शरीर, मन या वचन से करे तो उसका कारण प्रमाद है।

४—पुण्यः—पुण्य विशेष कर पाँच प्रकार के हैं। प्रथम तो दान पुण्य है। जब हम मन, वचन, शरीर से बिना किसी पाप के किये हुए किसी को सुख पहुँचावे तो उसको मन का, वचन का या शरीर का पुण्य कहेंगे। पाचवा पुण्य नमस्कार पुण्य है। अपने से बड़े और धर्मात्मा पुरुषों को नमस्कार करने से, अपने मन में 'मान' कषाय मन्द पड़ा रहता है। और अपना मन तथा जिनको नमस्कार किया जाय उनका भी मन हर्षित होता है। इसलिये यह भी पुण्य ही समझा जाता है। इसका परिणाम भी शुभ होता है।

अर्थात् आवश्यकता व नियम से अधिक वस्तु लेना, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, मोह (अथवा आसक्ति) द्वेष, क्लेश, अभ्याख्यान (अर्थात् किसी पर झूठा दोष लगाना), पैशुन्य (अर्थात् चुग़ली करना) निन्दा करना, दुख सुख मानना, माया, मृषा (अथवा पाखंड यानी बगुले के समान जो बाहर से तो ध्यान में बैठा मालूम होता है परन्तु बैठा रहता है मछली की ताक लगाये), मिथ्यात्व द्वारा जो क्रिया हो, ये सब पाप हैं।

यह सब क्रियाए भी पाप हैं जिन से भय, शोक, किसी पुरुष व स्त्री से प्रेम या किसी भी वस्तु में मोह, आसक्ति उत्पन्न हो, अथवा जिसमें अनुचित हसी हो।

इन पापों के परिणाम से जीव नर्क में या पशु योनि मे जन्म ले सकता है और यदि पाप इतना बड़ा न भी हो और जीव फिर मनुष्य योनि में आवे तो उसको अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं। उसका जन्म बुरे स्थानों में नीची जाति में निर्धन घर मे होता है। उसका शरीर अपूर्ण हो अथवा कोई और दुःख हो सकता है। एक परिणाम यह हो सकता है कि ज्ञान व बुद्धि पर आवरण पड़ जाता है। यह पाच ज्ञानावरण है जिनका वर्णन सम्यग्ज्ञान में किया जायगा।

की शक्ति रखते हुए और सफलता की सम्भावना होते हुए भी उन्हें नहीं कर सकते। जैसे यदि हम व्यापार करते हों तो यद्यपि व्यापार की अवस्था तो ऐसी है कि हमको लाभ हो परन्तु यदि इस कर्म का उदय हो तो उसमे हमको इच्छानुकूल लाभ न हो सकेगा।

४—मोहनी कर्मः—उनको कहते हैं कि जो हमारी मानसिक शक्तियो को एक मोह मे फसा देते है जिससे हमको आत्मा व अन्य का ठीक ज्ञान, यथार्थ वस्तु स्वरूप का ज्ञान, व धर्म पर श्रद्धा विश्वास नहीं होता और हम सत्य मार्ग पर चल नहीं सकते। यह सम्भव है कि हम धर्म को अच्छी तरह से जानते हों परन्तु फिर भी हम उसका आचरण नहीं कर सकते।

५—वेदनीय कर्मः—वह कर्म है जिनके प्रभाव से हमें दुख सुख का अनुभव होता है।

६—आयु कर्मः—वह कर्म हैं जो हमारी आयु को निश्चित करते है। अर्थात् जिन से हमारे जीव का हमारे शरीर से किसी नियत समय तक सम्बन्ध बना रहता है।

७—नाम कर्म—वह कर्म हैं जिनसे हमारी गति निश्चित होती है कि मनुष्य गति होगी या देव गति या पशु गति इत्यादि तथा जिससे शरीर व अङ्गोपाङ्ग की रचना होती है।

विकार पैदा करने वाले होते हैं। यह उसकी कर्तव्य शक्ति को भी
ाते हैं। इस लिये यह उसका घात करते हैं। पिछले चार अघातिया
र्म कहलाते हैं। इनका सम्बन्ध केवल फल भोगने से है। यह
ाधन से तो नष्ट हो ही जाते हैं वरन् आप भी फल देकर नष्ट हो
ाते हैं।

समय के विचार से कर्म के तीन विभाग हैं:—

१—सत्ता कर्म:—वह हैं जिनकी सत्ता इस समय भी है। जो
हली क्रियाओं के संस्कार स्वरूप जीव में लगे हुए हैं। इन्हीं को
ंचित कर्म कहते हैं।

२—उदय:—उदय कर्म पहले जन्मों के किये हुये वह कर्म हैं जो
इस जन्म में फलीभूत हो रहे हैं। इन्हीं को प्रारब्ध कर्म भी कहते हैं।
इन कर्मों से ही हमारा यह शरीर व जन्म निश्चित हुआ है।

३—बन्ध:—बन्ध कर्म वह हैं जो इस जन्म में आस्रव द्वारा हो
रहे हैं। जो कि अगले जन्मो के लिये बन्धन बना रहे हैं। इनको ही
क्रियामाण कर्म भी कहते हैं।

की शक्ति रखते हुए और सफलता की सम्भावना होते हुए भी उन्हें नहीं कर सकते। जैसे यदि हम व्यापार करते हों तो यद्यपि व्यापार की अवस्था तो ऐसी है कि हमको लाभ हो परन्तु यदि इस कर्म का उदय हो तो उसमें हमको इच्छानुकूल लाभ न हो सकेगा।

४—मोहनी कर्म:—उनको कहते हैं कि जो हमारी मानसिक शक्तियों को एक मोह में फसा देते हैं जिससे हमको आत्मा व अन्य का ठीक ज्ञान, यथार्थ वस्तु स्वरूप का ज्ञान, व धर्म पर श्रद्धा विश्वास नहीं होता और हम सत्य मार्ग पर चल नहीं सकते। यह सम्भव है कि हम धर्म को अच्छी तरह से जानते हों परन्तु फिर भी हम उसका आचरण नहीं कर सकते।

५—वेदनीय कर्म:—वह कर्म है जिनके प्रभाव से हमें दुख सुख का अनुभव होता है।

६—आयु कर्म:—वह कर्म हैं जो हमारी आयु को निश्चित करते हैं। अर्थात् जिन से हमारे जीव का हमारे शरीर से किसी नियत समय तक सम्बन्ध बना रहता है।

७—नाम कर्म:—वह कर्म हैं जिनसे हमारी गति निश्चित होती है कि मनुष्य गति होगी या देव गति या पशु गति इत्यादि तथा जिससे शरीर व अङ्गोपाङ्ग की रचना होती है।

८—गोत्र कर्म:—इनसे यह निश्चित होता है कि हमारा जन्म किस घर में किस जाति में और किस परिस्थिति में होगा, अथवा लोक पूजित या लोकनिन्दित कुलों में होगा।

पहले चार को घातिया कर्म कहते हैं क्योंकि यह जीव के गुणों

... का ध्यान में रखते हुये जैसा जानना वैसा ही कहना व सदैव ... वचन बोलना और कभी भद्दी बातें न कहना ही सत्य है।

५—अकिंचन्य:—पीछी कमंडल शास्त्र को छोड़ कर अन्य ... न रखना बाहरी अकिंचन्य है। अपनी आत्मा के अतिरिक्त किसी को अपना न समझना न अपने को किसी का समझना ... अकिंचन्य है।

६—त्याग:—न्याय से पैदा किये हुए धन को उत्तम प्रकार से दान करना बाहरी त्याग है। मन से क्रोध, मान, माया, लोभ आदि ... छोड़ना अन्तर का त्याग है

७—शौच:—शरीर को निर्मल रखना बाहरी शौच है। जीवात्मा में ... न होने देना सन्तोष करना अन्तर का शौच है। ... बात विचार करने के योग्य है कि अब तक जो धर्म कहे हैं, ... न ... चार कषाय अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ ... गुण हैं।

जायगा तो उसका प्रभाव इस जीव पर बहुत समय तक रहेगा और यदि थोड़े लोभ से किया जायेगा तो थोड़े समय तक रहेगा। और जैसी कषाय की तीव्रता होगी उसी के अनुसार उसका फल भी होगा। तीव्र कषाय का फल नर्क मे जन्म देना होगा। उससे मन्द कषाय का फल पशु योनि में जन्म होगा। और उसे भी मन्द कषाय का फल मनुष्य योनि मे जन्म होगा। और यहाँ भी दुखों की मात्रा व काल कषाय के अनुसार होगा। जब तक वह सब कर्म क्षय न हो जाय उस समय तक मुक्ति नही प्राप्त हो सकती।

७—संवर—बन्ध को रोकने के लिये आस्रव को ही रोकना चाहिये। जिस से आस्रव रुके उसी को सवर कहते हैं। सवर इतने प्रकार से होते हैं।

(अ) दश धर्म—यहाँ धर्म का अर्थ उन भावों से है जो जीव के स्वाभाविक रूप को प्रकाश कर देते हैं और उसके ऊपर से पुद्गल आवरणों को हटाने के कारण होते हैं। यह धर्म दश हैं।

१—क्षमाः—अपने मे दड देने की शक्ति होते हुये भी क्षमा करना ही श्रेष्ठ है। क्रोध का कारण होने पर भी तत्व ज्ञान के बल से मन मे क्रोध न होने देना ही क्षमा है।

२—मार्दव—अपने पास विद्या, बल, धन आदि के होते हुये भी उनका अभिमान न करना यह मार्दव है।

३—आर्जव—मन, वचन, व काय की कुटिलता अथवा माया न [illegible] को कहते हैं।

४—सत्य—जीवों के सत्य स्वरूप का जानना व प्राणियों के

जायगा तो उसका प्रभाव इस जीव पर बहुत समय तक रहेगा और यदि थोड़े लोभ से किया जायेगा तो थोड़े समय तक रहेगा। और जैसी कषाय की तीव्रता होगी उसी के अनुसार उसका फल भी होगा। तीव्र कषाय का फल नर्क मे जन्म देना होगा। उससे मन्द कषाय का फल पशु योनि में जन्म होगा। और उसे भी मन्द कषाय का फल मनुष्य योनि मे जन्म होगा। और यहाँ भी दुखों की मात्रा व काल कषाय के अनुसार होगा। जब तक वह सब कर्म क्षय न हो जाय उस समय तक मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती।

७—संवर—बन्ध को रोकने के लिये आस्रव को ही रोकना चाहिये। जिस से आस्रव रुके उसी को सवर कहते हैं। सवर इतने प्रकार मे होते हैं।

(अ) दश धर्म—यहाँ धर्म का अर्थ उन भावों से है जो जीव के स्वाभाविक रूप को प्रकाश कर देते हैं और उसके ऊपर से पुद्गल आवरणों को हटाने के कारण होते हैं। यह धर्म दश हैं।

१—क्षमाः—अपने मे दड देने की शक्ति होते हुये भी क्षमा करना ही श्रेष्ठ है। क्रोध का कारण होने पर भी तत्व ज्ञान के बल से मन मे क्रोध न होने देना ही क्षमा है।

स्वाध्याय करना, मन में विनय का भाव रखना, व ध्यान करना अन्तरङ्ग तप है।

१०—ब्रह्मचर्यः—शरीर व वचन से ब्रह्मचर्य का पालन करना बाहरी ब्रह्मचर्य है। मन में भी कोई गन्दे विचार न लाना काम सम्बन्धी चेष्टा न करना और धार्मिक बातों का ही ध्यान करना अर्थात् काम वासना रहित हो परमात्मा या निजात्मा का ध्यान करना यह अन्तर का ब्रह्मचर्य है।

(ब) त्रिगुप्तिः—तीनों प्रकार के योगों को वश में रखना ही त्रिगुप्ति है। मन की क्रिया रोकना मनोगुप्ति है। और शरीर की क्रिया रोकना कायगुप्ति है। वचन को रोकना वचन गुप्ति है।

(स) पाँच आचार :—यह आचार ऐसे हैं कि जिनके करने से शुभास्रव होते हैं जैसे (१) ज्ञान आचार—शास्त्रों का पढ़ना, जिससे ज्ञान बढे। (२) दर्शनाचार—तत्वों की दोष रहित श्रद्धा करना दर्शनाचार है। (३) चरित्राचार—पाप पूर्ण क्रियाओं का छोडना, और पूर्व में किये हुए पापों का गुरू से प्रायश्चित लेकर शुद्ध होना ही चरित्राचार है। (४) तपाचार :—तप करने को ही तपाचार कहते हैं। (५) वीर्याचार—अपनी शक्ति को शुभ कर्मों में लगाना ही वीर्याचार है।

(न) बारह भावना या अनुप्रेक्षा :—इस प्रकार से तीनों गुप्ति सहित पाँच समिति का पालन करे और दश धर्मों को धारण कर मन में सदैव बारह भावना रक्खे तो नये कर्मों का आना और पहले कर्मों का [illegible] है। वह बारह भावना यह हैं।

१—अस्थिर भावना :—जीव का सांसारिक पदार्थों स्त्री, पुत्र,

९—**निर्जरा भावना :**—सुख दुख मे समान भाव रखने से स्वाध्याय, ध्यान, तप करने से पहले लगे हुए कर्म भी झड़ते, गिरते और नष्ट होते हैं। यही निर्जरा भावना है।

१०—**लोक भावना :**—इस ससार में उर्ध्व लोक (जिसमे देवता रहते हैं), मध्य लोक (जिसमे मनुष्य रहते हैं), अधो लोक (जिसमे नर्क है) की रचना पृथक पृथक हैं। इन पर विचार करना लोक भावना है।

११—**बोधि दुर्लभ भावना :**—ससार में भटकते हुए प्राणियो को बोधि (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र) प्राप्ति कितनी दुर्लभ है। निजात्मा को भूल कर अन्य पदार्थों को लोग अपनाते हैं। और अब ऐसा दुर्लभ सयोग मिला है कि मनुष्य का शरीर और सत्य धर्म का ज्ञान। इसलिये इससे लाभ उठाना चाहिये। ऐसा विचार करना बोधि दुर्लभ भावना है।

१२—**धर्म भावना :**—धर्म दस प्रकार का जो कहा है उसका विचार करना धर्म भावना है।

(थ) **बाईस परीषह:**—तपस्वी मुनि इस प्रकार आचरण व विचार करते हुए बाईस प्रकार के दुखों को सहन करे। उनसे दुखी न हो। वे यह है। भूख, प्यास, सरदी, गरमी, मच्छर आदि जीव जन्तुओं का काटना नग्न रहने का या श्वेताम्बरो मे फटे पुराने कपड़े मिलने का दुख न मानना। कोई द्वेष करे तो उसको भी सहना। किसी प्रकार का कष्ट आ पड़े तो उसको सहना, और उसके कारण से अपनी जगह से नहीं हटना। जैसी जगह सोने को मिले उसमें

रखने से पहले जगह को झाड़ लो। आग जलाने से पहले जगह को झाड़ लो। लकड़ियों को झाड़ कर आग में लगाओ।

५—उत्सर्ग समिति:—कूड़ा, कर्कट, मल, मूत्र चाहे जहाँ नहीं फेंकना चाहिये, परन्तु ऐसे साफ या अलग स्थान में रखो जहाँ उसके रखने से किसी को दुख न हो, जीव हानि न हो और जहाँ हरी घास आदि न हो।

८— निर्जरा:—आठवाँ तत्व निर्जरा कहलाता है। निर्जरा दो प्रकार का होता है।

१—सविपाक निर्जरा:—जब कोई कर्म समय पर अपना पूरा फल देकर नष्ट हो जाय तो उसको सविपाक निर्जरा कहते हैं। यह निर्जरा सब को होता है इसलिये इसके लिये साधन नहीं किया जाता।

अविपाक निर्जरा:—जो पहले कर्म हैं वे फल देने के समय से पहले ही नष्ट कर दिये जायँ इसी को अविपाक निर्जरा कहते हैं। यह तभी होता है कि जब संवर पूर्वक क्रियाएँ की जायँ। उससे आगे का आस्रव रुक कर पहले कर्म भी ढीले पड़ जाते हैं और उनका प्रभाव भी धीरे धीरे नष्ट हो जाता है।

९—मोक्ष—नवाँ तत्व मोक्ष है। जब सब कर्म नष्ट हो जायँ और जीवात्मा अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप में परिणित हो तो उसको मोक्ष कहते हैं। ऐसा जीवात्मा सिद्ध कहलाता है। सिद्ध के रूप, रस, गंध, स्पर्श, राग, द्वेष आदि नहीं होते, वरन् वह अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन व अनन्त शक्ति वाला, आवागमन से रहित, सदैव सिद्ध लोक में विराजमान आनन्द में मग्न रहता है।

२—निःकांक्षित:—सांसारिक विषय भोगों की इच्छा न कर वह निष्काम कर्म करता है।

३—उपगूहन:—अपने गुणों को ढकना और दूसरे के दोषों को छिपाना यह उसका स्वभाव हो जाता है।

४—स्थिति करण अंग:—जो कोई धर्म से गिरता हो उसे उचित सलाह देकर धर्म मे दृढ करता है।

५—भक्ति:—अरहन्त सिद्ध और शास्त्र मे उसकी भक्ति होती है।

६—वात्सल्य अग:—सब प्राणियों से प्रेम भाव रखना वात्सल्य अग है।

७—प्रभावना अग:—जो धर्म उसको प्राप्त हुआ है उसको दूसरों मे भी प्रकाशित करने की प्रबल इच्छा होती है।

८—निर्विचिकित्सा:—किसी के शरीर की मलीनता पर ध्यान न देकर उसके गुणों से प्रेम करना।

सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये सत्सग और उस सत्सग से शास्त्र के ज्ञान को प्राप्त करने की आवश्यकता है। फिर पाप कर्मों का बल घटने लगता है। शुभ कर्मों का बल बढने लगता है। धीरे धीरे वे भी क्षय होकर सम्यग्दर्शनी को शुद्ध चैतन्य आत्मा का अनुभव होता है। उस समय उसका सम्यकत्वपूर्ण होता है। सम्यक प्राप्त गृहस्थ बिना सम्यक्त्व प्राप्त मुनि से भी श्रेष्ठ है। जब तक उसे मोक्ष नहीं मिलती तब तक भी वह इन्द्र देव आदि के शरीर को पाता है।

—:०:—

२—श्रुतज्ञानः—यह किसी वस्तु के द्वारा अन्य वस्तु के ज्ञान को कहते हैं। यह अक्षरयुत या अनाक्षर भी हो सकता है। इनमें साक्षर-श्रुत ज्ञान ही मुख्य है। क्योंकि इसी के द्वारा सब को धर्म का ज्ञान होता है। परन्तु इस ज्ञान पर भी आवरण पड़ जाता है जिससे मनुष्य या तो असत्य शास्त्रों को ही सत्य समझने लगता है या सत्य शास्त्रों का अर्थ ठीक नहीं समझता, यही मिथ्या श्रुतज्ञान है। जब यह मिथ्यात्व हट जाय तभी सम्यग्दर्शन हो सकता है। क्योंकि उसी समय सत्य तत्वों का यथार्थ ज्ञान हो सकता है।

३—अवधि ज्ञानः—जिस ज्ञान मे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की सीमा सहित रूपी पदार्थों का प्रत्यक्ष (बिना इन्द्रिय व मन की सहायता के) ज्ञान हो उसको अवधि ज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान पर भी आवरण पडा हुआ है। इस आवरण के हटने से सम्यक् अवधि ज्ञान होता है।

४—मनपर्य्य ज्ञान :—दूसरे के मन की बात को स्पष्ट जान लेना यह मनपर्य्य ज्ञान है। परन्तु साधारण मनुष्यों को यह नहीं होता। सम्यग्चरित्र द्वारा ही यह ज्ञान प्राप्त होता है।

५—कैवल्य ज्ञानः—जीव को सम्पूर्ण पदार्थों का व उनकी दशाओं का पूर्ण प्रत्यक्षज्ञान होना यह कैवल्य ज्ञान है। इस आनन्द-मय ज्ञान के पीछे ही सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

श्रुतज्ञान चार प्रकार का है :—

१—प्रथमानुयोगः—इसमे तीर्थंकर और अन्य महापुरुषों के चरित्र वर्णन किये जाते है। उनके जीवन से धर्म पालन के दृष्टान्त मिलते हैं।

२—श्रुतज्ञानः—यह किसी वस्तु के द्वारा अन्य वस्तु के ज्ञान को कहते हैं। यह अक्षरयुत या अनाक्षर भी हो सकता है। इनमें साक्षर-श्रुत ज्ञान ही मुख्य है। क्योंकि इसी के द्वारा सब को धर्म का ज्ञान होता है। परन्तु इस ज्ञान पर भी आवरण पड़ जाता है जिससे मनुष्य या तो असत्य शास्त्रों को ही सत्य समझने लगता है या सत्य शास्त्रों का अर्थ ठीक नहीं समझता, यही मिथ्या श्रुतज्ञान है। जब यह मिथ्यात्व हट जाय तभी सम्यग्दर्शन हो सकता है। क्योंकि उसी समय सत्य तत्वों का यथार्थ ज्ञान हो सकता है।

३—अवधि ज्ञानः—जिस ज्ञान मे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की सीमा सहित रूपी पदार्थों का प्रत्यक्ष (बिना इन्द्रिय व मन की सहायता के) ज्ञान हो उसको अवधि ज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान पर भी आवरण पडा हुआ है। इस आवरण के हटने से सम्यक् अवधि ज्ञान होता है।

४—मनपर्य्य ज्ञान :—दूसरे के मन की बात को स्पष्ट जान लेना यह मनपर्य्य ज्ञान है। परन्तु साधारण मनुष्यों को यह नहीं होता। सम्यग्चरित्र द्वारा ही यह ज्ञान प्राप्त होता है।

५—कैवल्य ज्ञानः—जीव को सम्पूर्ण पदार्थों का व उनकी दशाओं का पूर्ण प्रत्यक्षज्ञान होना यह कैवल्य ज्ञान है। इस आनन्द-मय ज्ञान के पीछे ही सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

श्रुतज्ञान चार प्रकार का है :—

१—प्रथमानुयोगः—इसमें तीर्थंकर और अन्य महापुरुषों के चरित्र वर्णन किये जाते हैं। उनके जीवन से धर्म पालन के दृष्टान्त मिलते हैं।

धर्म पर श्रद्धा होती है। और इस धर्म के सम्बन्ध में विशेष जानने की इच्छा होती है।

२—करणानुयोगः—इसमें संसार के लोकों का, स्वर्ग, मध्य, नरक लोकों का वर्णन है। जीवात्मा के कर्मों से जीवात्मा में किस प्रकार क्या परिवर्तन होता है अथवा क्या बन्धन पड़ता है, वह किस प्रकार टूटता है, जिससे जीवात्मा शुद्ध हो जाय, यह सब इसके अन्तर्गत है।

३—चरणानुयोगः—इसमें जैन गृहस्थ और जैन मुनि के धर्म बताये जाते हैं कि जिससे वे कर्म बन्धन को नष्ट कर के मोक्ष प्राप्त करें।

४—द्रव्यानुयोगः—इसमें संसार के छः द्रव्यों का स्वरूप वर्णन है। इससे पहली पुस्तक धार्मिक चरित्र में प्रथमानुयोग था। जैन गृहस्थी की दिनचर्या, उत्सव व तीर्थ सम्यक् चरित्र सम्बन्धी प्रकरण चरणानुयोग के हैं। श्रुत ज्ञान को प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं :—

१—विनम्र भाव अथवा विनय। गुरु से विनम्र रहना तो चाहिये ही वरन् शास्त्र और ग्रन्थों को भी आदर से रखना व पढना चाहिये। पवित्र और शान्त चित होकर उनका स्वाध्याय करना चाहिये। इससे वे शीघ्र समझ में आजाते हैं, और ज्ञान की वृद्धि होती है।

२—मन की उलझनों को कम करना और सन्तोष व धर्म पूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिये। इससे मन शान्त होता है और शास्त्र में भी बुद्धि अच्छी तरह लगती है।

———

३—सम्यग्चरित्र

केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिये सम्यग्चरित्र की आवश्यकता है। इस सम्यग्चरित्र में साधक धीरे धीरे गृहस्थ से मुनि धर्म ग्रहण करने के योग्य बनता है। और फिर मुनि धर्म का पूर्णतया पालन करके केवल ज्ञान को प्राप्त करता है। जैन गृहस्थों के साधारण धर्म पहले ही कहे जा चुके हैं। परन्तु यदि वह मुनि धर्म धारण करने की इच्छा करते हों तो उनको ग्यारह प्रतिमाओं को धारण करना चाहिये। ऐसी ग्यारह प्रतिमाओं को धारण करने वाला जैन गृहस्थ नैष्टिक श्रावक कहलाता है, क्योंकि सम्पूर्ण धर्म के पालन करने की उसकी निष्ठा होती है। प्रतिमा का अर्थ मूर्ति का है। जो श्रावक जिस प्रतिमा को धारण करता है वह मानों उसकी मूर्ति हो जाता है, क्योंकि कोई प्रतिमा उसी समय पूर्ण होती है कि जब प्रतिमा के धर्म का पूर्णतया पालन हो। ११ प्रतिमाए नैष्टिक श्रावक की उन्नति के ११ दर्जे हैं।

प्रतिमा धारण करने का यह नियम है कि जब तक पहली प्रतिमाओं में बताये गये कर्तव्यों का पूरा पालन न हो तब तक आगे की प्रतिमा धारण न की जाय। यदि ऐसा किया जाता है तो वह केवल पाखंड मात्र होता है। आगे की प्रतिमा धारण करने की योग्यता उसी समय होगी कि जब उसने पहली प्रतिमा मे बताये गये कर्तव्यों का पूर्ण आचरण कर चुका हो। जो पहली प्रतिमा का ही पालन नहीं कर सका उसका आगे की प्रतिमा धारण करना मानो अपने आप को धोखा देना है। प्रतिमा पालन मे धर्म व व्रत तो वही होते हैं जो अब तक कहे

आये हैं परन्तु इनका अतिचार रहित, निर्दोष, व उनका पूर्ण भावना सहित पालन होता है।

अतिचार:—उसको कहते हैं कि जिसके करने से व्रत, धर्म सर्वथा नष्ट नहीं होता परन्तु उसमें दोष अवश्य लग जाता है। जैसे अहिंसा धर्म के अतिचार हैं किसी को चोट मारना, बांधना, छेदना, अधिक भार लादना, खाना कम देना। इनमें से कोई दोष नहीं होना चाहिये, और साथ ही उसकी भावनाएं भी हों। ये भावनाएं ऐसी हैं जैसे मन से भी किसी का बुरा न चाहना। वचन बोल कर हंसी कर के या बुराई करके भी किसी को दुख न देना। चलने में इधर उधर न देखकर नीचे देखते चलना जिससे जीव न मर जाए, वस्तुओं को रखने उठाने में भी अत्यन्त सावधानी रखना कि किसी को कष्ट न हो। जब इन सब बातों का पूर्णतया पालन होगा तभी अहिंसा व्रत पूर्ण हो सकता है। और जब ऐसे ही अन्य व्रत भी पूर्णतया पालन हों तो व्रत प्रतिमा पूरी होगी। और आगे की प्रतिमा के धारण करने का अधिकार होगा। इस प्रकार जो ग्यारह प्रतिमाओं को पूर्ण कर ले वह परम धर्मात्मा है और मुनि धर्म का अधिकारी हो जाता है वे ग्यारह प्रतिमाएं यह हैं:—

१—दर्शन प्रतिमा, २—व्रत प्रतिमा, ३—सामायिक प्रतिमा, ४—प्रोषधोपवास प्रतिमा, ५—सचित त्याग प्रतिमा, ६—रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा, ७—ब्रह्मचर्य प्रतिमा, ८—आरम्भ त्याग प्रतिमा, ९—परिग्रह त्याग प्रतिमा, १०—अनुमति त्याग प्रतिमा, ११—उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा।

१—दर्शन प्रतिमा:—जिसने सम्यग्दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व प्राप्त किया है, जिसमें सम्यक्त्व के गुण प्रकट हो गये हैं, जो जैन धर्म का इसलिये पालन नहीं करता कि ऐसा शास्त्र मे लिखा है वरन् उसको उस धर्म पर हृदय से विश्वास है, वह उसे अच्छे प्रकार समझता है और हर्ष पूर्वक उसका पालन करता है, जिसने गृहस्थी के आठ मूल गुणों का पूर्णतया पालन और सप्त व्यसनों का पूर्णतया त्याग किया है वह दर्शन प्रतिमा धारी है। ऐसा मनुष्य धर्म का पालन ऐसा करता है कि जुआ—खेलना—त्याग में चोपड़ ताश शतरंज भी नहीं खेलता, यहां तक कि दौड़ आदि मे भी वहस नही करता।

२—व्रत प्रतिमा:—यह प्रतिमा अत्यन्त आवश्यक और अन्य सब का आधार स्वरूप है इस प्रतिमा मे बारह व्रत लेने पडते हैं। उनमे पाच तो अणुव्रत हैं। यह मुख्य हैं। इनकी सहायता के लिये तीन गुणव्रत और चार शिक्षा व्रत होते हैं।

अणुव्रत—१—अहिंसा व्रत है। अहिंसा के अतिचार और भावनाए ऊपर कही गई हैं। यह व्रत अतिचार रहित और भावना सहित होने मे पूर्ण होता है। परन्तु गृहस्थी स्थावर हिंसा (अर्थात् पृथ्वी कायिक इत्यादि जीवो की हिंसा) से नहीं बच सकता। इसलिये गृहस्थी के लिये त्रसजीवों की, व दो से पाच इन्द्रिय तक के जीवों की हिंसा ही वर्जित है।

२—सत्याणु व्रत.—सत्य बोलने के व्रत मे अप्रिय बोलना, वृथा बकना, हँसी करना, मिथ्या उपदेश करना, किसी की गुप्त बातें प्रकट करना या किसी की आज्ञा बिना उसके नाम से कोई बात लिखना,

या कहना, यह सब सत्य के व्रत में दोष लगाते हैं। सत्य के व्रती को क्रोध छोड़ देना चाहिये और लोभ भी नहीं करना चाहिये। इसका भी भय नहीं करना चाहिये कि सत्य बोलने से उसकी कोई हानि होगी। सत्य वचन पापी को तो अप्रिय लगते ही हैं। उसको अप्रिय लगने की कोई परवाह नहीं करनी चाहिये। धर्मात्मा मनुष्य सत्य वचन भी प्रिय शब्दों में बोलते हैं।

३—अचौर्यव्रत :—चोरी न करने के व्रत में किसी की गिरी हुई, भूली हुई, या रक्खी हुई चीज़ को नहीं लेना चाहिये और न किसी दूसरे को देना चाहिये। चोरी किया हुआ धन लेना या वस्तु मोल लेना, राजनियमों को तोड़ कर महसूल न देना, नापने या तौलने में नाप या बाट का कम होना, या धोखे से चीज़ें मिलावट करके बेचना, ये इसके अतिचार हैं। ये नहीं होने चाहिये। इस व्रत की यह भावना है कि ऐसे स्थान में न रहे जहा दुष्ट, झगडालू मनुष्य रहते हों। ऐसे मकान में न रहे जहा किसी दूसरे से झगड़ा हो। किसी दूसरे के स्थान में बरजोरी न घुसे।

४—ब्रह्मचर्य व्रत :—ब्रह्मचर्य को स्वप्न में भी त्याग न करे। अश्लील पुस्तकें न पढे और न अश्लील गाने गावे। पर स्त्री की ओर आख उठाकर देखे भी नहीं और न ऐसे दृश्यों को स्मरण करे कि जिसमें पर स्त्री सम्मिलित हो न ऐसे चित्र ही रक्खे। दूसरे की पुत्री व पुत्र के विवाह का प्रयत्न करना भी इस व्रत का अतिचार है। इसलिये नहीं करना चाहिये। ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाला अपने शरीर में तेल व उबटन का प्रयोग नहीं करता, और न बहुत स्वादिष्ट —

पुष्टिकारक भोजन खाता है, वरन् नियमित व सात्विक आहार करता है।

५—परिग्रह परिमाण व्रतः—इस व्रत का धारण करने वाला यह निश्चय कर लेता है कि वह भोग के पदार्थों की इतनी संख्या या मात्रा ही रक्खेगा। जैसे एक मनुष्य ने व्रत किया कि वह पचास हजार से अधिक द्रव्य संग्रह नहीं करेगा। जो उससे अधिक होगा तो वह दान कर देगा। ऐसे ही वह यह व्रत कर सकता है कि इतने नौकर, कपड़े, मकान, सवारी आदि रक्खेगा।

गो धन गज धन बाजि धन, और रतन धन खानि।
जब आवत सन्तोष धन, सब धन धूरि समान॥
चाह घटी चिन्ता गई, मनुवा बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिये, ते शाहन पति शाह॥

इस व्रत का धारण करने वाला दूसरे के वैभव को देख कर न तो आश्चर्य करता है और न उसकी आप इच्छा करता है। उसका किसी वस्तु में राग द्वेष नहीं रहता। वह सन्तोष से परिपूर्ण हो जाता है।

तीन गुण व्रत—१—दिग्व्रतः—दिग्व्रत में श्रावक यह प्रतिज्ञा करता है कि एक नियत क्षेत्र के बाहर वह जीवन भर नहीं जायगा। क्षेत्र का विस्तार वह अपनी आवश्यकताओं के अनुसार नियत कर लेता है। इससे वह उन पापों से बचता है जो उस क्षेत्र से बाहर जाने में उससे बन जाते, और उस क्षेत्र से बाहर जाने की तृष्णा भी घट जाती है।

२—भोगोपभोग परिमाण व्रत.—परिग्रह परिमाण व्रत करने पर जो वस्तुएं प्राप्त हों उनमें भी किसी वस्तु को सदैव के लिये या कुछ काल

के लिये त्याग देना भोगोपभोग परिमाण व्रत कहलाता है। जैसे कोई कुछ दिन के लिये नमक खाना छोड दे, या कोई वनस्पति अथवा फल खाना छोड दे, या दिन भर में एक वार खाना खावे या किसी दिन उपवास करे। इसके व्रती के केवल भोग के छोड़ देना ही पर्याप्त नहीं है वरन् उसको उन भोगों का विचार, तृष्णा, ध्यान व स्मृति भी छोड़ देनी चाहिये।

३—अनर्थ दंड त्याग व्रत :—जिन वातों से विशेष प्रयोजन सिद्ध न होता हो अथवा जिनमें अपनी थोडी सी वेपरवाही से दूसरे के अधिक कष्ट होने की सम्भावना हो ऐसी क्रियाओं के दिग्व्रत के अनुसार नियत क्षेत्र में भी त्यागने के अनर्थ—दड—त्यागव्रत कहते हैं। क्योंकि इनसे अर्थ तो कुछ सिद्ध होता नहीं है और पाप अधिक हो जाता है। जैसे अश्लील पुस्तकों या ठगी, हिसा, झगडा सिखाने वाली पुस्तकों को लिखना, या ऐसी वातों का उपदेश, या ऐसी पुस्तकों या वातों का सुनना, विना प्रयोजन घूमते फिरना, ऊधम मचाना, अस्त्र के वेपरवाही से रखना, अश्लील वचन वोलना, आखें मटकाना, व्यर्थ ही वस्तुओं के नष्ट करना, विना आवश्यकता के सग्रह करना यह सव इस व्रत के व्रती के त्याग देना चाहिये।

चार शिक्षा व्रतः—१—देश व्रत :—दिग्व्रत में जो क्षेत्र नियत किया है उसमें भी कुछ काल के लिये क्षेत्र के अथवा अपनी क्रियाओं के कुछ और भी सकुचित कर लेना देश व्रत कहलाता है। जैसे कोई निश्चय करे कि वह दो दिन तक घर से वाहर नहीं निकलेगा या मौन रहेगा, या ध्यान में ही समय व्यतीत करेगा। ऐसे व्रत का लेने वाला

उस छोटे से क्षेत्र के बाहर न तो कोई वस्तु भेजता है और न कोई बाहर से वस्तु मँगाता है। न वह बाहर के किसी मनुष्य से बातें करता है और न कोई संकेत ही करता है।

२—सामायिक व्रत:—सामायिक की विधि प्रारम्भ में ही कही गई है। सामायिक आत्म दर्शन प्राप्त करने के लिये, सब पापों को नष्ट करने के लिये मुख्य क्रिया है। यह साधन की जड़ है। इसको यथा-शक्ति सभी जैनियों को करना चाहिये। परन्तु जिसने इस व्रत को लिया हो उसको नियम पूर्वक सदैव पालन करना चाहिये। सामायिक के समय प्रातःकाल, सायंकाल और दोपहर हैं, परन्तु अधिकतर प्रातःकाल और सन्ध्या ही अच्छे रहते हैं।

३—प्रोपधोपवास व्रत:—यह उपवास महीने में चार बार अष्टमी और चतुर्दशी को किया जाता है। ४८ घंटे के लिये सब प्रकार का खाना आदि छोड़ दिया जाता है और न कोई शृंगार आदि किया जाता है। यहाँ तक कि स्नान भी नहीं किया जाता। केवल एक अंगोछा पहन कर एक चादर ओढ़ कर दिन भर सामायिक और स्वाध्याय या जिन पूजा करते हैं, और मन, वचन, कर्म से सब कषाय और पापों को छोड़ते हैं। तख्त या जमीन पर सोते हैं। इस प्रकार मुनि के समान रहते हैं। इससे दुखों को सह कर भी शान्त चित्त रहने का अभ्यास पड़ता है।

४—अतिथि संविभाग व्रत:—इसकी विधि "दान" के सम्बन्ध में विस्तार से कही है। उसी के समान अतिथि का सत्कार करने का व्रत लेने से उन नियमों का पूर्णतया पालन करना चाहिये। अतिथि

वह है जो विना बुलाये, विना किसी को सूचना दिये, रास्ते मे नीचे को यह देखता हुआ कि कोई हिंसा तो नहीं होती है, श्रावक के घर भोजन को आवे।

३—सामायिक प्रतिमाः—सामायिक व्रत में श्रावक प्रातःकाल व सन्ध्या काल ही सामायिक करता था। परन्तु सामायिक प्रतिमा में दोपहर को भी करना पडता है। इसके अतिरिक्त सामायिक नियत समय पर विधिपूर्वक अवश्य हो जाना चाहिये। इसका इतना विचार रखना पड़ता है कि सामायिक प्रतिमाधारी रेल आदि ऐसी सवारी में नहीं बैठता कि जो उसकी इच्छानुसार ठहर न सके। सामायिक का समय नहीं टलना चाहिये। सामायिक व्रत में समय का इतनी कठोरता से पालन भी न बने तो हानि नहीं है।

४—प्रोषधोपवास प्रतिमा—इस प्रतिमा के धारण करने वाला अति चार रहित व्रत करता है। वह विना देखे व साफ किये पृथ्वी पर न कुछ रखता है, न उठाता है, न सोता है, न विछौना विछाता है, न उपवास के प्रति अनादर का भाव रखता है और न नियम भूलता है।

५—सचितत्याग प्रतिमाः—इस प्रतिमा के धारण करने वाला विना पकाई हुई वनस्पति या कद, मूल, फल नहीं खाता। इससे रसना इन्द्री पर अधिकार प्राप्त करता है। यह प्रतिमाधारी सचित पदार्थ को पका कर या सुखा कर अचित कर सकता है। पानी भी वह गर्म ही पीता है।

६—रात्रि भोजन त्याग प्रतिमाः—साधारण जैनी भी रात्रि को

भोजन नहीं करते हैं। परन्तु प्रतिमाधारण करने वाला पानी भी नहीं पीता, अपने घर के लोगों को या महमानों को भी रात्रि में भोजन नहीं कराता और न पानी पिलाता है।

७—ब्रह्मचर्य प्रतिमा:—इस प्रतिमा के धारण करने वाला सब प्रकार से स्त्री सग को छोड़ देता है। अपनी पत्नी के साथ भी नहीं रहता। न शृङ्गार करता है न किसी स्त्री के सोने के स्थान पर बैठता है। वह गाना, बजाना, नाचना, आदि नहीं करता। और न अच्छे अच्छे भोजन ही खाता है। ऐसे मेलों मे नहीं जाता जहाँ स्त्रियाँ गाती या नाचती हो। चटकीले रङ्ग के कपड़े नहीं पहनता। पत्थर या तख्ते पर सोता है। कोमल आसन पर नही बैठता। सिर के बालों को सुन्दर नही बनाता।

८—आरम्भ त्याग प्रतिमा:—आरम्भ त्यागी अपने गृहस्थी के सर्व कार्य छोड देता है। यहाँ तक कि वह दीपक भी नहीं जलाता। जो धन सचित हो उसका सदुपयोग कर लेता है। परन्तु और नहीं कमाता। यह प्रतिमा उस समय धारण की जाती है कि जब गृहस्थी के कार्य पुत्रादि को सौंप दिये हों। आरम्भ त्यागी किसी सवारी पर भी नहीं बैठता। वह धार्मिक कार्य का तो आरम्भ करता है परन्तु सासारिक कार्य आरम्भ नही करता।

९—परिग्रह त्याग प्रतिमा:—इस प्रतिमा के धारण करने वाला सिवाय सर्दी से रक्षा करने के लिये आवश्यक वस्त्र के और सब वस्तुए, धन धान्य आदि त्याग देता है। वह बाहर से ही वस्तुओं का त्याग नहीं करता वरन अपने मन मे भी उनकी इच्छा नहीं करता। अपने

सम्बन्धियों [illegible] के समान समझना और उनसे अधिक स्नेह नहीं करना। नौकर न रख कर अपना काम प्रायः स्वयं ही करता है।

१०—अनुमति त्याग प्रतिमा :—अब तक [illegible] घर वालों को गृहस्थी के कार्यों में सलाह देता था। पर उनसे व्यापार कृषि करने के लिये नहीं कहता था परन्तु उनके पूछने पर अनुमति देता था। अब वह उसको भी त्याग कर देता है। सांसारिक कार्यों को वह सर्वथा त्याग कर स्वाध्याय व ध्यान में ही लगा रहता है। भोजन के समय जो मिले उसे ही खा लेता है परन्तु वह शुद्ध पवित्र भोजन हो।

११—उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा:—इस प्रतिमा के धारण करने वाला घर को छोड कर मन्दिर आदि में रहता है। साधुओं के से नियम पालन करने लगता है। यदि वह लगोटी और खड वस्त्र धारण करे तो क्षुल्लक कहलाता है। और यदि लगोटी ही रखे तो एल्लक कहलाता है। दोनों अपने साथ पानी के लिये कमण्डलु, और पीछी रखते हैं। दिन में एक बार भिक्षा करते हैं। किसी के घर पर जाकर भोजन नही मागते वरन् द्वार पर उसके अगवानी करने पर भोजन लेते हैं। यदि भिक्षा मिली तो मिली नहीं तो दूसरे घर को देखते हैं। दोनों के लिये यह नियम है कि अकेले न रहें वरन् दूसरे साधुओं के साथ रहें।

तीन शल्य :—व्रती श्रावक को तीन शल्य अथवा बाणों से सदैव सचेत रहना चाहिये। यदि इनमें से कोई भी उत्पन्न हो जाता है तो सब किया कराया नष्ट हो जाता है।

१—माया शल्यः—उपवास आदि किसी व्रत में भी माया या पाखड, चालाकी न करे। केवल दूसरों को दिखाने के लिये न करे।

२—मिथ्यात्व शल्यः—व्रती श्रावक कभी स्वप्न में भी व्रतों में अश्रद्धा न रखे।

३—निदान शल्यः—किसी फल की इच्छा न करे, जैसे कि स्वर्ग की इच्छा। किसी प्रकार का लोभ आने से साधन व्यर्थ हो जाता है।

४—समाधि मरण :—व्रती या नैष्टिक श्रावक जब बूढा हो जाय और मृत्यु के निकट हो, अथवा असाध्य रोग से मृत्यु के निकट पहुँच जाय, उस समय यदि सब प्रकार का खाना भी छोड़ दे, शरीर की श्वास लेने के अतिरिक्त सब क्रियाओं को छोड दे, शान्त स्थान में, शान्त चित हो, धार्मिक मनुष्यों के सङ्ग धर्म ध्यान करता हुआ णमोकार मन्त्र को जपता हुआ, या जिन भगवान का ध्यान करता हुआ मृत्यु को प्राप्त हो तो उसको समाधिमरण कहा जाता है। वह चित की शुद्धता से उत्तम गति पाता है।

४—जैन मुनि

कोई कोई ग्रन्थ जैन धर्म में भी चार आश्रमों की कल्पना करते हैं। उनके अनुसार गृहस्थ से पहले कुमार अवस्था में विद्या अध्ययन के समय ब्रह्मचर्य आश्रम है। फिर गृहस्थाश्रम है। और आठवीं प्रतिमा धारण से वानप्रस्थ आश्रम का आरम्भ समझा जाता है। और मुनि दशा को सन्यास आश्रम कहते हैं (जैसा कि श्रावक धर्म संग्रह य

चरित्रसार में लिखा है)। आठवीं प्रतिमा में आरम्भ त्याग कर ही मनुष्य गृहस्थ त्याग का आरम्भ कर देता है और क्षुल्लक व एल्लक होने के अनन्तर सन्यासी हो जाता है।

मुनि धर्म का अधिकारी:—वही है जिसने १—सम्यग्दर्शन प्राप्त किया हो। २—ग्यारह प्रतिमाओं को धारण किया हो, ३—अपूर्ण अग न हो। ४—किसी ऐसे रोग में ग्रसित न हो जिससे मुनि जीवन में विघ्न हो। ५—जिसे किसीका ऋण न देना हो। ६—जो न बालक हो और न वृद्ध हो।

मुनि गृहस्थ त्यागी होते हैं और अपना घर नहीं रखते। इसलिए इनको अनागार कहते हैं। आत्मस्वरूप का साधन करने से साधु, वस्तुत्व का मनन करने से मुनि, तपो बल द्वारा ऋद्धिया प्राप्त करने से ऋषि, और सम्पूर्ण क्रियाए सयम पूर्वक करने से यति भी कहते हैं। यह भी ग्यारह प्रतिमाओं के धारण करने वाले होने चाहिये। जिनमें यह प्रतिमाए नहीं हैं वे क्रमानुसार मुनि कहलाने के अधिकारी नहीं हैं।

मुनियों क मूल गुण यह हैं—

पांच महाव्रत का पालन:—यह श्रावक के पांच अणुव्रत के ही और भी अधिक कठोर स्वरूप हैं जिनमें पाच पापों का मन, वचन, काय से करने कराने व अनुमति देने का त्याग है।

१—अहिंसा महाव्रतः—मुनि केवल दो इन्द्री से पांच इन्द्री तक के ही जीव की हिसा नहीं छोड़ते वरन् स्थावर जीवों की हिंसा भी यथाशक्ति नहीं करते। इसलिये कोई कोई जैन यति (स्थानकवासी सम्प्रदाय के) मुख पर कपड़े की पट्टी डाले रहते हैं जिससे वायु के जीव

नष्ट न हों। मन से तो ये किसी की भी हिंसा नहीं करते। यद्यपि भोजन करते हैं परन्तु इनका लक्ष्य उसी दशा पर रहता है जब कि इनको इसकी भी आवश्यकता न रहे और केवली हो जाय। जो केवल ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं ये आहार नहीं करते वरन् योग बल से आवश्यक परमाणु उनके शरीर मे प्रवेश करते रहते हैं जिससे उनका शरीर स्थिर व दृढ़ बना रहता है।

२—सत्य महाव्रतः—मुनि कभी भूल कर भी मुख से असत्य बात नहीं निकालते।

३—अचौर्य अथवा आस्तेय महाव्रतः—मुनि दूसरे की वस्तु को बिना पूछे लेना तो अलग रहा यदि उनको भोजन कमण्डलु आदि के अतिरिक्त कोई वस्तु देवे भी तो भी नहीं लेते। यदि कोई मुनि कहीं ठहरे तो वहा की किसी वस्तु को जैसे चौकी आदि को बिना पूछे तनिक से समय के लिये भी काम में नहीं लावेंगे।

४—ब्रह्मचर्य महाव्रतः—मुनि ब्रह्मचर्य का पूर्णतया पालन करते हैं और अपने मन को सदैव आत्म चिन्तन में लगाये रखते हैं।

५—परिग्रहत्याग महाव्रतः—यहा परिग्रह का परिमाण नियत नहीं किया जाता वरन् परिग्रह का त्याग किया जाता है। मुनि अपने पास सिवाय कमण्डलु मोरपखी (शरीर आदि पर से जीवों को झाड़ने के लिये) और कुछ भी नहीं रखते। श्वेताम्बर व स्थानकवासी जैन साधु केवल पहनने के लिये श्वेत कपड़े रख सकते हैं।

दूसरे मूल गुण —१—पच समिति का पालन, २—सयम अथवा पञ्च इन्द्रियों का दमन, ३—सामायिक का करना, ४—केश लोंच,

५—एक भुक्ति अथवा दिन भर मे एक बार भोजन करना। (और यदि दिगम्बर मुनि हो तो) ६—आचेलक्य अर्थात् वस्त्र त्याग तथा ७—खड़े होकर हाथ में ही लेकर भोजन करना "अन्य मूल गुण" हैं। पच समिति, सयम, मामायिक का पहले वर्णन हो चुका है।

केश लोंच:—जब मुनि धर्म की दीक्षा ली जाती है तो प्रथम केश लांच होता है। मुनि होने वाले को अपने शिर के सब बाल हाथ से उखाड़ डालने चाहिये। इससे उसकी सहन शक्ति व वैराग्य की परीक्षा हो जाती है। इसके पीछे भी दो महीने से लेकर चार महीनें तक के समय में केशों को एक बार उखाड डालना चाहिये। जिस दिन केश लोंच हों उस दिन उपवास करना उचित है।

आचेलक्य:—दिगम्बर साधु वस्त्रों का भी त्याग कर देते हैं। इससे वे उनके धोने, सीने, आदि की क्रियाओं से मुक्त हो जाते हैं। दिगम्बर साधु नगर से दूर वन या पर्वत की गुफा आदि एकान्त स्थान में ध्यान किया करते हैं।

श्वेताम्बर साधु वस्त्र पहनते हैं परन्तु किसी से मागते नहीं हैं। यदि कोई भक्त स्वय दे जाय तो ले लेते हैं। और वह भी जब कि वह वस्त्र उस गृहस्थी के पास फालतू हो, उसके प्रयोग में न आता हो, और साधुओं के लिये ही न बनाया गया हो, तब लेते हैं।

भोजन—जैन मुनि एक बार ही भोजन करते हैं:—अधिक बार भोजन करना शास्त्र के विरुद्ध है। दिगम्बर मुनि दाता गृहस्थ के घर पर ही खड़े होकर और हाथ में ही भोजन लेकर खाते हैं। श्वेताम्बर

व स्थानक वासी मुनि भोजन को अपने पात्र में लेकर और अपने स्थान पर लौट कर भोजन करते हैं।

भोजन के लिये मुनि उस स्थान पर न जाय जहाँ दान शाला हो क्योंकि वहाँ उन्हीं के दान के लिये भोजन होगा। और मुनि उसी भोजन को लेते हैं, जो विशेष कर उनके लिये न बनवाया गया हो, और जो गृहस्थी की आवश्यकता से भी अधिक हो, और जहाँ विवाह, मृतक का सूतक, नाच, गान, रोना, बजाना, बहस आदि न हो रहे हों। भोजन के लिये चलते समय कोई "व्रत परिसख्यान" करे अर्थात् यह निश्चय करे कि यदि किसी निश्चित प्रकार का भोजन मिलेगा तो लेंगे वर्ना नहीं लेंगे। मुनि, जहाँ और भिक्षुक भी हों या जहाँ भीड हो वहाँ न जाय और न निर्धन या दुष्ट मनुष्य के यहाँ जाय। द्वार पर पहुँच कर कोई शब्द न करे और न कोई सकेत करे। यदि गृहस्थी आदर पूर्वक बुलावे तो जाय नहीं तो आगे चल दे। जिस गृह को एक बार छोड दे फिर उसमें उस दिन न आवे। खाने के साथ या मुनि के शरीर से किसी सचित्त पदार्थ का स्पर्श भी न हो। यदि ऊपर से पक्षी बीट कर दे या कोई हिंसा उसके सामने हो जाय या कोई त्यागी हुई वस्तु भोजन में आजाय, या भोजन अथवा भोजन का पात्र हाथ से गिर जाय या भोजन को जाते समय साधु किसी पीड़ा से मूर्छित हो जाय या पेट चले, या साधु को कोई रोक दे तो साधु भोजन न करे और उस दिन उपवास से ही रह जाय।

मुनि एक नगर के पास पाँच दिन और छोटे गाँव के पास एक दिन से अधिक न ठहरे तथा जिनका साधन टूट गया है (तपस्या भ्रष्ट

हो गई है) उनका सग न करे। शास्त्र का स्वाध्याय करता रहे। तीनों गुप्ति का साधन करे। पाच आचारों का पालन करे। बाहरी व अन्तरङ्ग दोनों प्रकार के तप करे और शुभ व शुक्ल ध्यान में लगा रहे।

ध्यान मन के एकाग्र करने को कहते हैं। यह चार प्रकार का है। १—आर्त ध्यान—उसको कहते हैं कि जिसमे चित्त दुख अथवा दुख सम्बन्धी वस्तु का चिन्तन करता रहे। २—रौद्र ध्यान उसको कहते हैं कि जिसमें हिंसा, चोरी, असत्य, परिग्रह आदि किसी पाप का चिन्तन होता है। ३—धर्म ध्यान—इसमें धर्म सम्बन्धी बातों का ध्यान होता है। ४—शुक्ल ध्यान—यह ध्यान सब में श्रेष्ठ है। इसमें इन्द्रियों की या मन की क्रिया नहीं होती। इसमें ध्यान करने वाले को यह भी ज्ञात नहीं होता कि वह ध्यान कर रहा है और ध्यान की अवस्था बढते बढ़ते केवल ज्ञान हो जाता है।

शुक्ल ध्यान करते करते केवल ज्ञान होने के पीछे जब श्वास लेने की क्रिया बन्द हो जाती है उसी समय वह जीवात्मा सिद्ध स्वरूप हो सिद्ध-शिला (सिद्ध लोक) में जा विराजता है।

अज्ञान से सिद्धि तक चौदह दर्जे अथवा गुण स्थान कहे जाते हैं। पहला तो मिथ्यात्वगुण स्थान अज्ञान का स्थान है। चौथा अविरत सम्यग्दृष्टि गुण स्थान है। यहाँ सम्यग्दर्शन हो जाता है। परन्तु अभी मोक्ष प्राप्ति के लिये अणुव्रत और प्रतिमा धारण की क्रिया आरम्भ नहीं होती इसलिये इसे अविरत कहते हैं।

पाचवां स्थान व्रती श्रावक का है। उसे देश—व्रत—गुण—स्थान कहते हैं। आगे के नौ स्थान मुनि धर्म के हैं और जैसे जैसे मुनि अपने कर्मों को क्षय करते जाते हैं वैसे वैसे उनका स्थान बढता जाता है। तेरहवें स्थान पर केवल ज्ञान प्राप्त करके दिव्य ध्वनि द्वारा लोगों को धर्म का उपदेश करते हैं। और चौदहवे स्थान के पश्चात् मुक्ति प्राप्त करते हैं।

बुद्ध धर्म

१—बुद्ध धर्म के सिद्धान्त

अनेश्वरीय:—बुद्ध धर्म का यह एक विशेषत्व है कि सिक्खों के समान बुद्ध अपने धर्म शास्त्रों को ईश्वर वाक्य नहीं कहते और न इलहाम या ईश्वरीय ज्ञान के सिद्धान्त को मानते हैं। उनके धर्म शास्त्र एक मनुष्य के ही कहे गये हैं परन्तु वह मनुष्य बुद्ध थे जिन्होंने कितने ही जन्मों में धर्म पूर्वक जीवन व्यतीत करके और बुद्धत्व प्राप्त करने के लिये साधन करके उस अवस्था को प्राप्त किया था जिसमें कि उनको संसार के सब रहस्य मालूम हो गये, और वे मनुष्य जीवन का उद्देश्य व उस उद्देश्य को प्राप्त करने के मार्ग को निकाल सके थे। यह अवस्था उनको किसी के दूसरे के अथवा ईश्वर की कृपा से प्राप्त नहीं हुई थी वरन् अपने ही परिश्रम से मिली थी। दूसरे लोग भी उनके समान आचरण करने से उस अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। उस अवस्था में पूर्ण ज्ञान के अतिरिक्त सुख, सन्तोष, शान्ति और दिव्य शक्तियां भी प्राप्त होती हैं। यह उनके जीवन से स्पष्ट है। उनका यह मार्ग संसार के सब मनुष्यों के लिये है चाहे वह छोटे हों या बड़े, चाहे वह किसी धर्म व जाति के हों। इस मार्ग में किसी सिद्धान्त को केवल दूसरे के विश्वास पर स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है वरन् स्वयं अनुभव करके देख लो। इस मार्ग में किसी की कृपा के लिये प्रार्थना की आवश्यकता

नहीं है वरन् अपना भाग्य अपने हाथ में है। धर्म के अनुसार चलने पर अपने आप सुख शान्ति व निर्वाण प्राप्त होंगे।

इसीलिये बुद्ध धर्म ईश्वर के सम्बन्ध में कोई विचार नहीं करता। बुद्ध धर्म को ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। वह इस झगड़े में नहीं पड़ता कि ईश्वर के होने न होने पर विचार करे। ससार कैसे बना व किसने बनाया इस झगड़े में व्यर्थ समय नहीं खोता, वरन् जो आवश्यक बात है उस पर ही विचार करता है, कि इस ससार में कैसे रहना चाहिये जिससे शान्ति व निर्वाण प्राप्त हो। बुद्ध धर्म का उद्देश्य केवल मरने पर ही निर्वाण प्राप्त करने का नहीं है वरन् इस जन्म मे भी दुखों से छुटकारा पाकर शान्ति प्राप्त करने का है।

निदान अथवा कारण शृङ्खला:—हम दुखों से छूटने के उपाय को जभी समझ सकते हैं कि जब दुखो के कारण को जानें। ससार में लोगों को अनिवार्य दुख क्या है? (१) उनकी शक्तियों का बुढापे में क्षीण हो जाना और मृत्यु द्वारा अपने प्रिय लोगो से वियोग होना ही यह दुख है। यदि कोई धनवान मनुष्य बड़े यत्न से अन्य सब दुखो से बचा भी रहे फिर भी उसको यह तो झेलने ही पड़ते हैं। (२) बुढापा और मृत्यु का कारण पैदा होना है। जो पैदा होगा वह मरेगा भी। (३) पैदा होने का कारण आवागमन है। मनुष्य अनेक शरीर धारण करता रहता है। बुद्ध भगवान के भी अनेक जन्मों की कथाएँ प्रसिद्ध हैं। जब तक यह आवागमन रहेगा तब तक यह मरना जीना होता रहेगा। (४) आवागमन का कारण है जीवन का मोह। (५) जीवन का मोह सासारिक वस्तुओं की इच्छा से होता

है। (६) किसी वस्तु के लिये इच्छा उस वस्तु के ज्ञान प्राप्त होने से होती है। (७) वस्तु का ज्ञान किसी इन्द्रिय व उस वस्तु में सम्बन्ध होने से होता है। (८) उन इन्द्रियों का कारण किसी जीव का व्यक्ति होना है। (६) और उस व्यक्तित्व का कारण अहकार है। (१०) अहकार पूर्व सस्कार या कर्म फल से बनता है। (११) सस्कार का कारण अज्ञान अथवा अविद्या है।

चार सत्य :—१—जीवन में कुछ न कुछ दुख का होना अनिवार्य है। २—यह दुख धन की, सुख की, और जीवन के मोह की इच्छाओं के कारण होता है। क्योंकि जब तक यह इच्छानुसार मिलते रहें तब तक तो ठीक और जहा इनमें कुछ भी कमी हुई तभी दुख होता है। इतना ही नहीं वरन् जितना सुख प्राप्त होता जाता है उतनी ही उससे अधिक के लिये इच्छा बढ़ती जाती है। इसलिये मनुष्य प्रायः असन्तुष्ट रहता है। सुख प्राप्न करते भी उसे सुख नहीं होता। अस्तु यह इच्छा और तृष्णा ही दुख का कारण हैं। ३—इस इच्छा और तृष्णा के वश में होते ही मन सन्तुष्ट हो जाता है और दुख दूर हो जाता है, क्योंकि जो कुछ भी प्राप्त हो उसी में सुख का अनुभव होने लगता है। ४—इस इच्छा और तृष्णा को वश में करने की विधि अष्टागी मार्ग है जिसका भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया है।

इन चार सत्यों को न जानने के कारण अज्ञान अथवा अविद्या से लोग दुख पाते हैं। यदि इनको जानते तो इच्छा और तृष्णा के वश में नाचने के बदले अष्टागी मार्ग से उनको वश में करके सुख व सन्तोष पाते। इच्छाओं के दमन से न तो क्रिया होती और न उसके

परिणाम स्वरूप सस्कार बनते। सस्कारों के न बनने से अहकार व मनुष्य की इन्द्रियाँ व व्यक्तित्व आदि नहीं बनते और न बुढ़ापे और मृत्यु का दुख होता क्योंकि सस्कारों के क्षय से जब दूसरा जन्म ही नहीं होता तो फिर मृत्यु का दुख कहा रहता। बस यही निर्वाण है। इस प्रकार इच्छा और तृष्णा के दमन से इस जन्म मे भी सुख और अन्त मे निर्वाण दोनो प्राप्त होते हैं।

अष्टाङ्गी मार्गः—१—सद्दृष्टि या ज्ञान, २—सद्इच्छा, ३—सद्-वचन, ४—सद्कार्य, ५—सद्आजीविका, ६—सद्व्यायाम, ७—सद् विचार, (सद् स्मृति) ८—सद्ध्यान अथवा समाधि। इनका पालन ही अष्टागी मार्ग कहलाता है।

सत्य ज्ञान होने से इच्छाएँ भी उसके अनुसार होंगी। जब इच्छाए धर्मानुसार होंगी तो मनुष्य के कार्य, वचन, आजीविका, उपार्जन, विचार, व्यायाम, भी सब धर्मानुसार होंगे। इससे उसका मन हल्का और शान्त होगा। जिससे वह ठीक विधि से ध्यान करके समाधि प्राप्त कर सकता है। इन सब का मूल सत्य ज्ञान है कि जिससे अविद्या का नाश होता है। सत्यज्ञान मे पचशीलों का जानना तथा उनका आचरण आस्रव, दशबन्धन, पचभावना, चतुर्क्रिया, चतुष्पद साधन, सप्तज्ञान और अष्टागी मार्ग का ज्ञान है।

पचशील:—१—अहिंसा, २—अस्तेय (या किसी की वस्तु बिना मालिक की आज्ञा के न लेना) ३—ब्रह्मचर्य ४—झूठ न बोलना ५—मदिरा आदि नशीली चीजें न पीना। इन पाच शीलों का पालन

सब को करना चाहिये चाहे वह गृहस्थ उपासक हो या उपासिका हो अथवा भिक्षु हों।

दशशील:—श्रामनेर दशशील का पालन करते हैं। उनके लिये इन पचशीलो के अतिरिक्त पाच और नियम भी हैं। वह यह हैं। १—विकाल भोजन वर्जित—बारह बजे के पीछे दूसरे दिन तक भोजन न करना २—फूल माला, गहने न पहनना, और सुगन्ध न लगाना, ३—ऊँचे या सुन्दर आसन पर न सोना, ४—नाचने, गाने, बाजा बजाने अथवा खेल तमाशे मे सम्मिलित न होना, ५—सोना चादी न छूना।

महाराजा अशोक ने अपने एक शिलालेख मे एक आज्ञा को विशेष रूप से खुदवाया था कि 'कभी यह मत कहो कि तुम्हारा अपना धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है और न दूसरों के धर्म का निरादर करो।"

आस्रव या अकुशल मूल तीन हैं:—यह वे हैं जिनसे पाप करने की वृत्ति हो। १—काम या शारीरिक सुख की इच्छा व जीवन का मोह, २—अज्ञान, ३—क्रोध। पचशील अष्टागी मार्ग इनको रोकने वाले होते हैं। इनके बन्द हो जाने से भविष्य मे जीवन बनाने वाले सस्कार नहीं बनते। इनके रोकने से दशबन्धन टूटते हैं। वे निम्नलिखित हैं।

दशबन्धन.—१—अहङ्कार अथवा अपने व्यक्तित्व मे विश्वास, २—धर्म मे सन्देह (इससे ज्ञान प्राप्त नहीं होने पाता) ३—शीलव्रत अथवा रस्म रिवाज का आडम्बर, ४—इच्छा, ५—क्रोध ६—रूप राग अथवा सौन्दर्य से मोह और उसके प्राप्त होने की इच्छा ७—अरूप

राग अथवा स्वर्ग में रूप रहित जीवन प्राप्ति की इच्छा, ८—अभिमान, ९—अपनी प्रशसा, १०—अविद्या। इन बन्धनों से सर्वथा मुक्त होने के लिये पाच सद्भावना, चार साधन और चार सत्कार्य करने चाहिये। इसके लिये पंच बल और सत्यज्ञान अंग आवश्यक हैं।

पच भावना:—पाच भावना ये हैं १—शरीर की गन्दगी अथवा मलीनता, कि यह रक्त, मास इत्यादि मलीन वस्तुओं का बना हुआ है। इस पर विचार करना जिससे शरीर का मोह छूटे, २—सब से मित्र भाव रखने पर विचार करना, ३—सब पर दया करना, ४—दूसरों के सुख मे सुखी होना, ५—अपने सुख दुख की परवाह न करना।

चार सतकार्य :—यह हैं। १—पापों को रोकना, जिससे पाप का अकुशल परिणाम न पैदा न होने पावे, २—और जो अकुशल परिणाम पाप का हो जाय उसको साधन द्वारा नष्ट कर देना, ३—धर्माचरण से कुशल परिणाम का पैदा करना, ४—कुशल परिणाम को बढाना।

चतुष्पद साधन अथवा ब्रह्म विहारः—प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि हैं। प्राणायाम से, श्वास रोकने से मन को रोकने का अभ्यास होता है। जब मन बाहर की सब बातों मे रुक जाय तब उसको किसी निश्चित दिव्य वस्तु पर लगा देते हैं। इसी को ध्यान कहते हैं। जब वह ध्यान ऐसा हो जाय कि वह वस्तु सदैव मन मे बनी रहे। इसको धारणा कहते हैं। धारणा से ध्यान गहरा होता जाता है और समाधि प्राप्त हो जाती है। समाधि मे मन सर्वथा रुक जाता है जिससे मनुष्य को इस जन्म मे सुख व शान्ति प्राप्त होते हैं और आगे के लिये भी संस्कार न बनने से दूसरा जन्म प्राप्त नहीं होता। समाधि अवस्था मे ही पूर्ण ज्ञान

प्राप्त होता है उस समय यह प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि ससार अन्त में शून्य के सिवाय कुछ भी नहीं रहता। न कोई रूप रहता है न रग। न नाम रहता है न शब्द। इसीलिये बौद्ध लोग किसी वस्तु की सदैव स्थिति नहीं मानते। समाधि से मन की शक्तिया एकाग्रित होने से उनका बल जमा होता रहता है। इससे बुद्धि तीव्र हो जाती है और ससार के रहस्य समझ में आने लगते हैं। अन्त में बुद्धत्व प्राप्त हो जाता है। इन साधनों के यथावत् पालन के लिये पंच बल और सप्त ज्ञान साधन की आवश्यकता होती है साधक को उचित है कि उनको बढाता रहे।

पंचबल—निम्न लिखित हैं :— १—श्रद्धा, २—उत्साह, ३—स्मरण शक्ति, ४—विवेक (प्रज्ञा) ५—समाधिबल ।

मनुष्य को सभी काम समझ बूझ कर करना उचित हैं इसलिये ज्ञान प्राप्त करने के लिये विवेक की आवश्यकता है। परन्तु विवेक के कार्य के लिये आलस्य त्याग, स्मरण शक्ति और उत्साह की आवश्यकता है। तथा बिना श्रद्धा व विश्वास के तो एक पद भी नहीं चल सकते। जिनका मन सदेह ही में डूबा रहे वे विवेक का प्रयोग किसके सम्बन्ध में करेंगे। प्रत्यक्ष ज्ञान पर तो विश्वास करना ही पड़ेगा और फिर इससे विवेक द्वारा सप्त ज्ञान के साधन को जान कर ग्रहण करना योग्य है। इसके अतिरिक्त एक बार सत्मार्ग का निश्चय करके उस पर विश्वास पूर्वक चलना चाहिये डावाडोल नहीं रहना चाहिये।

सप्तज्ञान साधनः—स्मृति २—अन्वेषण, ३—बल ४—प्रसन्न चित, ५—शान्ति, ६—एकाग्र मन, ७—निश्चलता हैं। यहा यह विचारने योग्य बात है कि मन शान्त, एकाग्र और निश्चल न होगा तो

विवेक का पूरा प्रयोग भी न हो सकेगा। जितनी निश्चलता अधिक बढ़ती जायगी उतना ही ज्ञान शुद्ध और स्वच्छ होता जायगा।

दशगुण अथवा पारिमिति:—धर्मात्मा मनुष्य अपने सासारिक व्यवहार मे दश गुणो का अवश्य पालन करता है। वे दश गुण ये है। १—दान करने की परमिति अपने शरीर के काटकर दान देने तक की है। जो ऐसा ही हर्ष पूर्वक कर सकता है उसी में यह गुण पूर्ण रूप से उपस्थित कहा जाता है। दान से मन दयालु और सरल व शुद्ध होता है। दान से इच्छा और तृष्णा वश में आती हैं क्योंकि जिसमे देने का भाव अधिक होगा उसमे लेने का भाव उतना नही होगा। इसलिये दान भी एक महा गुण है। इसके अतिरिक्त दान के भाव से समाज में व्यवस्था और सुख की वृद्धि होती है। २—शील, सब के साथ अच्छी तरह से व्यवहार करना, किसी को दुख न देना, दूसरो के दोषों को भी क्षमा कर देना, यही शील कहलाता है। इसमे मन शान्त रहता है और उसका उद्वेग नष्ट हो जाता है। ३—शान्ति, किसी दुख से विचलित न होना इसी को शान्ति कहते हैं। ४—वीर्य, धर्मानुसार चलने के लिये उत्साह होना आलस्य का त्याग और ब्रह्मचर्य का पालन इसको वीर्य कहते है। आलस्य भी पाप है क्योंकि इसमें मन में कुविचार और धर्माचरण मे शिथिलता आती है। ५—निष्का-मना [illegible] सब वस्तुओं की आशा छोड़ना) संसार के व्या-[illegible] फल की इच्छा न करके धर्म का पालन करे। जो लोग इसी [illegible] सोचा करते हैं कि अमुक कार्य का क्या परिणाम होगा उनका [illegible] चिन्तित रहता है और उनको शान्ति नहीं प्राप्त होती।

इसके अतिरिक्त फल की चिन्ता से उन फलों की इच्छा होती है जिनमे कोई स्वार्थ साधन होता है। इससे इच्छाए वश मे नहीं होतीं वरन् मनुष्य उनका दास हो जाता है। इसलिये यदि फल की इच्छा छोड दी जायगी तो फिर चाहे जो भी फल हो मनुष्य धर्माचरण ही करेगा। इसकी पूर्णता गृहस्थी तक छोड़ने से होती है। ६—प्रज्ञा—बुद्धि को शुद्ध ध्यान में लगाने से ज्ञान की वृद्धि होती है और इसी गुण को प्रज्ञा कहते हैं। ७—सत्य—यह सब धर्मों का मूल है। जब तक इसको ग्रहण नहीं किया जाता तब तक अन्य बातों के अभ्यास में शिथिलता रहती है, और मन के विचारों के अनुसार दृढता से सद्कार्य करने का अभ्यास नहीं पड़ता। सत्य, मन, वचन, कर्म तीनों से हो सकता है। मन से बुरा या झूठा विचार करना मन का असत्य है। वचन का असत्य अयथार्थ बात कहना है। कर्म का असत्य चोरी करना व पाखड अर्थात् मन के भाव व बाहरी कार्य में भिन्नता होना है। ८—अधिष्ठान—जिस विचार को पकड़े उसका दृढता से पालन ही अधिष्ठान कहलाता है। ९—मैत्री—सम्पूर्ण ससार से मैत्री भाव रखना, किसी से भी द्वेष न करना, इससे मन मे कुसस्कार नहीं होते जिस प्रकार दान लोभ को वश में करता है उसी प्रकार मैत्री का भाव क्रोध को वश में करता है। १०—उपेक्षा—धर्म पालन करते हुए ससार के हानि, लाभ, सुख, दुख, आदर, निरादर आदि से प्रभावित न होना ही उपेक्षा भाव कहलाता है। इस प्रकार मन को विचलित करने वाले भावों से मनुष्य बचा रहता है।

चतुरमार्ग—चतुर मार्ग पर चलने वाला ही आर्य कहलाता है।

आर्य "सज्जन मनुष्य" को कहते हैं। यह चार मार्ग भिन्न मार्ग नहीं हैं। वरन् एक ही मार्ग के दर्जे अथवा भाग हैं।

१—प्रथम मार्ग पर चलने वाला श्रोतापन्न—कहलाता है। यह वह मनुष्य है जिसने चार आर्य सत्यों को समझा है।

२—दूसरे मार्ग—पर चलने वाला सकृदागामी कहलाता है। यह वह है जिसके प्रथम पाँच बन्धन (ऊपर कहे हुए दश बन्धनों मे से) कुछ कुछ छूट गये हैं। इसको अभी कम से कम एक जन्म और लेना पड़ता है।

३—जब वह पाचों बन्धन सर्वथा छूट जाय तो साधक अनागामी कहलाता है।

४—जिसके दशों बन्धन छूट गये हों वह अरहन्त कहलाता है। अरहन्त क्लेश रहित, सस्कार रहित, जीवन मुक्त अवस्था वाले को कहते हैं।

सब स्त्री पुरुषों को अरहन्त पद प्राप्त करने का अधिकार है। इसके लिये किसी जाति विशेष की आवश्यकता नहीं है। भगवान बुद्ध के समय मे कितने ही शूद्रों ने एव चाडालों ने भी अरहन्त पद प्राप्त कर लिया था। भगवान बुद्ध का एक प्रधान शिष्य उपाली, जो विनय का आचार्य था और जिसने अरहन्त पद प्राप्त कर लिया था, जाति का नाई था। अरहन्त सुनीत जाति का चाडाल था।

अरहन्त को अभिन्न ज्ञान (जिसमे वस्तुओ की भिन्नता नष्ट हो जाती है और जो ज्ञान समाधि में प्राप्त होता है) दिव्य दृष्टि, अन्तर श्रवण, अर्थात् भीतरी दिव्य शब्दो का सुनना, पूर्व जन्मों का ज्ञान

और दिव्य शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। अरहन्त पद प्राप्त करने के लिये भिक्षु होना आवश्यक नहीं है। गृहस्थ रह कर भी अरहन्त पद प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु अरहन्त होते ही वह या तो भिक्षु अवस्था को प्राप्त होगा या शरीर छोड देगा। गृहस्थियो के समान कपड़े पहिने हुये नहीं रह सकता।

जो मनुष्य बिना भिक्षु धर्म ग्रहण किये हुए परन्तु गृहस्थ को छोड़ कर एकान्तवास में अपने परिश्रम से ही बुद्धत्व पद प्राप्त करता है वह प्रत्येक बुद्ध कहलाता है। प्रत्येक बुद्ध की विशेष महानता इस कारण है कि उन्होंने भिक्षु सघ की सुविधाओं के बिना और बिना किसी से उपदेश लिये हुए भी परम पद को प्राप्त कर लिया है। परन्तु एक बुद्ध शासन काल में प्रत्येक बुद्ध नहीं होते और न प्रत्येक बुद्ध धर्म का उपदेश कर सकते हैं। वे केवल आप ही धर्म का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

जो निर्वाण प्राप्त करने के अधिकारी हो गये हैं परन्तु उस निर्वाण की उपेक्षा करते हैं, उस निर्वाण को नहीं चाहते, उनका मन ससार के दुखों को देख कर पिघलता है, और वह उनको दूर करने के लिये सत्य धर्म का उपदेश करने के लिये शरीर को बनाये रखते हैं और निर्वाण को त्याग देते हैं, उस परम दया की मूर्ति भगवान को बुद्ध कहते हैं। यही बुद्ध ससार में धर्म का मार्ग स्थिर करके लोगों को उपदेश देकर ससार का उद्धार करते हैं।

ऐसे बुद्ध भगवान बहुत से हो चुके हैं। उनमें सब से पिछले शाक्य मुनि भगवान गौतम बुद्ध थे। उनको हिन्दू लोग भी अपना अवतार

मानते हैं। अब एक बुद्ध भगवान मैत्रेय और होंगे। कहते हैं कि भविष्य के लिये ये ही धर्म के मार्ग को स्थिर करेगे।

निर्वाण :—का अर्थ मोक्ष होता है। अर्थात् जब कोई ऐसा पद प्राप्त कर ले कि फिर उसके नये जन्म की सम्भावना न रहे, उसकी सब इच्छाएं नष्ट हो गई हों, पहले संस्कार नष्ट हो गये हों, और नये संस्कार बने न हों और फिर उस मनुष्य की मृत्यु हो तो उसके सर्व जन्मों के क्षय को, आवागमन से छुटकारे को, ही मुक्ति, मोक्ष या निर्वाण या परिनिर्वाण कहते हैं।

स्वर्ग और नर्क :—बुद्ध धर्म के अनुसार संसार अनेक लोकों में विभक्त है। जिनमे अनेक स्वर्ग हैं और अनेक नर्क हैं और अनेक मनुष्य लोक हैं। स्वर्गों मे देवता लोग रहते हैं। देवता वे मनुष्य हैं जिन्होंने पहले जन्म मे बहुत अच्छे कर्म किये थे। जब वे लोग उन कर्मों का फल स्वर्ग के सुख में पा लेते हैं तब फिर मनुष्य लोक मे जन्म लेते हैं। जो घोर पाप करते हैं वे नर्क मे जाकर अनेक दुख सहते हैं और उन सब पापों का दंड भुगत लेते हैं। तब फिर मनुष्य लोक में जन्म लेते हैं। स्वर्ग या नर्क में कोई सदैव नहीं रहता। अपने कर्मानुसार दंड या सुख भोग कर फिर वे मनुष्य योनि में आकर जन्म लेते हैं और उनको फिर कर्म द्वारा निर्वाण प्राप्त करने का अवसर मिलता है। जब तक निर्वाण नहीं होता तब तक यह चक्कर चलता ही रहता है। इस चक्कर मे स्वर्ग नर्क के अतिरिक्त मनुष्य का जब कर्मों के अनुसार पशु के शरीर को पा सकता है। मनुष्य योनि में ही अनेक प्रकार के सुख दुख पूर्ण जन्म प्राप्त कर लेता है। जब

उसके कर्म इतने अच्छे हों कि मनुष्य जीवन के सुख से अधिक सुख का अधिकारी हो तब वह स्वर्ग को जाता है। परन्तु यह सुख शारीरिक सुख है। जीवन मुक्त के समान सन्तोष व शान्ति का सुख नहीं है। इन सुखों में दुख मिला ही रहता है परन्तु जीवन मुक्त का सुख अखण्ड होता है क्योंकि उसमें असन्तोष का उद्वेग नहीं रहता। इसी प्रकार जिनके कर्म इतने बुरे हों कि उनका दण्ड मनुष्य शरीर में न मिल सकता हो, और न पशु अथवा राक्षस आदि के शरीर में मिल सकता हो, तो वे नर्क में जाते हैं।

इस प्रकार सुख व स्वर्ग अथवा दुख व नर्क देने वाला, यह दण्ड विधान करने वाला कोई ईश्वर या व्यक्ति नहीं हैं। जिसके जैसे कर्म होते हैं उन कर्मों के स्वाभाविक गुण ही मनुष्य को भिन्न भिन्न योनि में ले जाते हैं। जैसे चुम्बक पत्थर से लोहा खिच आता है इसी प्रकार उपयुक्त सस्कार वाला जीव अपने योग्य शरीर को प्राप्त कर लेता है। और जहाँ उन कर्मों का प्रभाव नष्ट हुआ कि नर्क व स्वर्ग लोक भी छूट जाते हैं। और फिर शेष सस्कारों के योग्य शरीर बन जाता है।

एक स्मरणीय बात यह है कि यह आवागवन का विधान सब के लिये है। चाहे वे बुद्ध धर्म वाले हों चाहे अन्य धर्म वाले हों। केवल बुद्ध धर्म को नाम के लिये ग्रहण करने से स्वर्ग नहीं मिल सकता और न आवागमन छूटता है। बुद्ध धर्म के मानने वालों को भी अधर्म का फल वैसे ही भोगना पड़ता है जैसे अन्य धर्म वालों को। परन्तु बुद्ध धर्म में ऐसा मार्ग बताया गया है कि जिस पर चलने से इस चक्कर से छुटकारा मिलता है और इस जन्म में भी शान्ति मिलती है।

अहिंसा:—बुद्ध धर्म के बताये हुए मार्ग का सार धार्मिक जीवन व्यतीत करना है। उसमें किसी विशेष रस्म रिवाज की आवश्यकता नहीं। यदि सामाजिक सगठन के लिये कोई नियम बना लिये जाँय वह दूसरी बात है। परन्तु वह नियम धार्मिक सिद्धान्तो के विरुद्ध नहीं होने चाहिये। उदाहरण के लिये बुद्ध धर्म अहिंसा का उपदेश करता है। किसी को दुख देना व मारना कदापि धर्म नहीं हो सकता। इसलिये ऐसे धार्मिक कार्य जिसमे किसी को मारा जाय बुद्ध धर्म के अनुसार धर्म नहीं हैं। उनसे मन निर्दयी, क्रूर और अपने सुख के लिये दूसरों की परवाह न करने वाला बनेगा। इससे इच्छा व तृष्णा का नाश नहीं होगा वरन् वह और बढ़ेगी। इससे बुरे सस्कार और बढ़ कर दुख की बढती होगी। इसलिये बुद्ध धर्म में अहिंसा को अत्यन्त आवश्यक माना है और उन यज्ञों का जिनमे हिंसा होती हो घोर विरोध है। यथार्थ मे बुद्ध भगवान का नये मार्ग के उपदेश मे एक मुख्य प्रयोजन हिंसा पूर्ण यज्ञों का विरोध ही था।

सहिष्णुता:—केवल धार्मिक जीवन पर सब कुछ निर्भर करने के कारण बुद्ध धर्म दूसरे धर्मों को भी बुरा नहीं कहता। उसके अनुसार जहाँ भी धार्मिक जीवन होगा वहाँ उसका फल भी होगा। किसी विशेष नाम से प्रयोजन नहीं है। यही कारण है कि भगवान बुद्ध ने संस्कारों के लिये (जैसे जन्म और विवाह के लिये) विशेष नियम या रीतियाँ नियत नहीं कीं। चाहे कोई भी रीति हो यदि वह अहिंसा और सत्य के विरुद्ध नहीं करती तो माननीय है। भगवान बुद्ध का उपदेश है कि किसी धर्म वाला भी हो यदि वह सत्य बोलता है, मानने वाले को

फेरता नहीं है, वरन् यथाशक्ति दान देता है, और क्रोध नहीं करता, वह भी स्वर्ग में जायगा। महाराज अशोक की आज्ञा थी, कि अपने धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ मत कहो और दूसरे धर्मों का निरादर मत करो, उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

इस सार्वभौमिक धार्मिक सिद्धान्त को सब ओर प्रचार करने के लिये उन्होंने भिक्षु संघों का बनाना आवश्यक समझा और उनकी व्यवस्था के लिये विशेष नियम भी बनाये जिन्हें 'विनय' भी कहते हैं। बुद्ध धर्म का पालन गृहस्थो और भिक्षु सभी कर सकते हैं। गृहस्थी को उपासक व उपासिका अथवा कभी श्रावक व श्राविका भी कहते हैं। ये लोग भी धार्मिक आचरण से अरहन्त पद तक पहुँच सकते हैं। चाहे किसी जाति के हों, चाहे स्त्री हो या पुरुष। और यदि वे अधिक शीघ्र अरहन्त पद प्राप्त करना चाहते हों तो भिक्षु संघ उनके लिये खुला है कि जिसमें कठोर नियमों का पालन करने से शीघ्र ही मन पर अधिकार प्राप्त हो जाता है।

२—भिक्षु धर्म

संयुक्त प्रदेश और बङ्गाल के बीच में बिहार प्रदेश है। इसका नाम बिहार इसी लिये पड़ गया है कि पूर्वकाल में इस प्रदेश में बौद्ध भिक्षुकों के बहुत से विहार बने हुए थे। इन विहारों में भिक्षुकों के संघ रहा करते थे। इन विहारों में बुद्ध धर्म की पाठशालाएं भी हुआ करती थीं जिनमें भिक्षु लोग उपासकों के बालकों को भी पढ़ाया करते थे। यदि

कोई नवयुवक श्रामनेर बन कर संघ में प्रवेश करना चाहता था तो वह अपने लिये कोई उपाध्याय या आचार्य चुन लेता था। कहते हैं कि पहले छोटी आयु वाले भी श्रामनेर बन जाते थे। जब भगवान बुद्ध ने अपने पुत्र राहुल को श्रामनेर बना लिया तो उनके पिता शुद्धोदन ने कहा था कि बालकों को उनके माता पिता की आज्ञा के बिना श्रामनेर बनाने से उनको बहुत कष्ट होता है। उस समय से यह नियम होगया कि कोई बालक अपने माता पिता की आज्ञा के बिना श्रामनेर नहीं हो सकता।

श्रामनेर :—यह नव भिक्षु पहले 'श्रामनेर' के नाम से प्रवेश किया जाता है। श्रामनेर भिक्षुओं में सब से पहला दर्जा है। प्रार्थी अपने बाल काट कर स्नान करके गेरूये रङ्ग की तीन चादर लेकर, एक तो धोती की तरह बांध लेता है एक कमर में लपेट लेता है, और एक कंधे पर इस तरह डाल देता है कि जिससे दाहिना कंधा खुला रहे। फिर वह किसी बौद्ध भिक्षु के सन्मुख जाकर श्रामनेर बनने के लिये प्रार्थना करता है। और तीन बार निम्नलिखित प्रतिज्ञा कर के दश शीलों को धारण करता है।

बुद्धम् शरणम् गच्छामि, (मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ)
धर्मम् शरणम् गच्छामि, (मैं धर्म की शरण जाता हूँ)
संघम् शरणम् गच्छामि, (मैं संघ की शरण जाता हूँ)

वह भिक्षु उसे श्रामनेर बना कर आशीर्वाद देता है। यद्यपि यह संस्कार कोई भिक्षु करा सकता है परन्तु संघ में प्रवेश के लिये उसके आचार्य की आज्ञा आवश्यक है। फिर श्रामनेर को दश शील की

जो ऊपर वर्णन किये जा चुके हैं, शिक्षा दी जाती है। इनको शिक्षा पद भी कहते हैं। इस सस्कार को प्रव्रज्य कहते हैं। इसके पश्चात् श्रामनेर पाँच वर्ष तक अपने आचार्य से शिक्षा प्राप्त करता है और बीस वर्ष की अवस्था में 'उपसम्पदा' का अधिकारी होता है। अर्थात् अब वह भिक्षु धर्म ग्रहण करने के सर्वथा योग्य होता है। उस समय वह सघ से उप-सम्पदा पाने अथवा भिक्षु धर्म को ग्रहण करने की आज्ञा के लिये प्रार्थना करता है। भिक्षु के इस दूसरे दर्जे का नाम "श्रमन" है। श्रामनेर तो विद्यार्थी के समान है श्रमन स्वय ही आचार्य होने की योग्यता का अधिकारी हो जाता है।

श्रमनः—फिर सघ के भिक्षुओ के सन्मुख श्रामनेर को उसका शिक्षक उपस्थित करता है। अब श्रामनेर भिक्षा के लिये एक प्याला भी साथ रखता है। उस अवसर पर कम से कम बीस भिक्षुओं का उपस्थित होना आवश्यक है। श्रामनेर शिक्षक के साथ इन भिक्षुओं के सन्मुख उपस्थित होकर दडवत प्रणाम कर के बैठ जाता है और भिक्षु की दीक्षा प्राप्त करने की प्रार्थना करता है। उपस्थित भिक्षु उससे पूछते हैं कि "तुमको कोढ, मृगी आदि कोई रोग तो नहीं है। तुम्हारा कोई अङ्ग अशक्त तो नहीं है, तुम बहरे गूगे तो नहीं हो, तुम पर किसी का ऋण तो नही है, तुम राजा के नौकर तो नहीं हो, तुम डाकू, सिपाही या घातक तो नही हो, तुमने अपने माता पिता की आज्ञा तो ले ली है। तुम पूरे बीस वर्ष की आयु के हो। क्या तुम्हारे पास भिक्षु के लिये आवश्यक वस्त्र और भिक्षा के लिये पात्र है। तुम्हारा नाम क्या है। तुम्हारे गुरू का नाम क्या है"। यदि इन प्रश्नों का

उत्तर सन्तोष जनक मिलता है तो प्रार्थी भिक्षु बना लिया जाता है और उसको "चतुर्विधि" और "चतुर्निषेध" की शिक्षा दी जाती है। श्रमन बनने के पीछे भी पाँच वर्ष तक उसको किसी आचार्य के पास शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। उपाध्याय या आचार्य बनने का अधिकारी नहीं हो सकता है जो उपसम्पदा प्राप्त करने के पीछे दस वर्ष तक भिक्षु रहा हो। जो अन्य धर्म वाला बुद्ध धर्म में प्रवेश करना चाहता है तो उसे कम से कम चार मास बुद्ध धर्म का अध्ययन करना पड़ता है। यदि फिर भी उसका निश्चय बुद्ध धर्म में प्रवेश करने का रहे तभी उसे स्वीकार किया जाता है।

चतुर्विधि:—१—खाने के लिये तोड़े हुए ग्रास ही लेना कि जिससे जितने ग्रास की आवश्यकता हो उतने ही लिये जाय और भोजन की सामग्री व्यर्थ नष्ट न हो।

२—कपड़े कूड़े में से उठा कर पहिनना जिससे किसी गृहस्थी को विशेष कष्ट न हो।

३—पेड़ों के नीचे निवास करना।

४—गोमूत्र औषधि में प्रयोग करना।

इन नियमों का प्रयोजन यह था कि भिक्षु लोग गृहस्थों पर बोझ न दें और उनके आचरण में पूर्णतया अपने आप को वश में करने का अभ्यास करें।

अनिरुद्ध लाभ—१—यद्यपि उपर्युक्त चतुर्विधि ही भिक्षु के धर्म हैं परन्तु यदि कोई स्वयं देवे या निमन्त्रण दे तो जैसा भोजन मिले उसे ग्रहण करने में कोई दोष नहीं होता। २—इसी प्रकार यदि कोई

उपासक वस्त्र देवे तो सूती या ऊनी नवीन वस्त्र भी ग्रहण कर सकते हैं परन्तु यह वस्त्र काषाय रंग के और तीन टुकडों में विभक्त होने चाहिये। तीन टुकड़ों में विभक्त होने से सिलाई के झगड़े के दूर होने के अतिरिक्त वस्त्रों की सुन्दरता का लालच भिक्षु को नहीं हो सकता। बिना सिले हुए कपड़ों में अनेक प्रकार के फेशन नहीं बन सकते। परन्तु यदि कोई वस्त्र भेट करना चाहे तो, वह संघ को भेंट कर सकता है और फिर संघ द्वारा वह वस्त्र आवश्यकतानुसार बांट दिये जाते हैं। किसी भिक्षु को जो वस्त्र भेंट दिये जाय वह भी संघ के सन्मुख उपस्थित किये जाने चाहिये। ३—जिस समय भ्रमण न कर रहे हों उस समय मकान या खोह या झोंपड़े आदि में भी रह सकते हैं। विशेष कर वर्षा ऋतु में। ४—मधु, मक्खन, घी, तेल, खाड आदि का भी औषधि के रूप में प्रयोग कर सकते हैं।

चतुर निषेधः—निम्नलिखित चार कार्य सर्वथा वर्जित हैं। इन के करने से भिक्षु निर्वाण के विमुख हो जाता है।

१—ब्रह्मचर्य के खंडित करने वाले कार्य।

२—चोरी। बिना दिया हुआ एक घास का पता भी लेना बुरा है।

३—हिंसा—किसी मनुष्य को मार डालना।

४—बिना दिव्य शक्ति प्राप्त किये ही उनके होने का दावा करना या प्रसिद्ध करना वर्जित है।

इन नियमों के विरुद्ध कोई कार्य करने से संघ से निकाले जाने का दंड है और वह भिक्षु मुक्ति से विमुख समझा जाता है। छोटे छोटे

दोषों के हो जाने पर भिक्षु अपने दोष को स्वीकार करके उसका प्रायश्चित ग्रहण करता है। यह प्रायश्चित प्रतिमोक्ष व पतितधर्म नाम के ग्रन्थ मे दिये हुए हैं। यदि कोई भिक्षु किसी गृहस्थी का दोष करे तो उसे उस ग्रहस्थी से क्षमा मागनी पडती है। यदि कोई गृहस्थी किसी भिक्षु का दोष करता है तो उसके यहा से कोई भिक्षु भिक्षा नहीं लेता है। सब से बडा दड जो भिक्षु को दिया जाता है उसे ब्रह्मदड कहते हैं। उसके अनुसार उस भिक्षु से कोई बोलता नहीं है। सघ का प्रबन्ध प्रजा तन्त्र के समान सभा में मत लेकर होता है। यद्यपि बैठने के स्थान व आदर मे बड़े छोटे भिक्षुओं का भेद होता है परन्तु मत देने का सबको अधिकार है।

भिक्षु खाना दिन मे केवल एक बार दोपहर के समय भिक्षा द्वारा पात्र में इकट्ठा किया हुआ खा सकते हैं। भिक्षा करने के समय भी किसी से भिक्षा मागी नहीं जा सकती। जो कोई अपनी इच्छा से उस पात्र में डाल दे वही ग्रहण करनी होती है। यदि किसी दिन कोई कुछ न डाले तो उस दिन भिक्षा के बिना ही रह जाना पडता है। जिस भोजन को एक बार मना कर दिया हो उसको फिर नहीं ग्रहण करना चाहिये। प्रत्येक मास मे उपासकों व भिक्षुओं को चार दिन, पूर्णमासी, अमावस्या, दोनो अष्टमी को उपवास करना चाहिये। इसको उपोसाथ कहते हैं। इन दिनों मे स्वाध्याय करने, प्रतिमोक्ष पढने, और उपवास करने के अतिरिक्त कोई कार्य नहीं किया जा सकता। इन दिनों मे स्कूल व न्यायालय इत्यादि बन्द रहते हैं।

भिक्षुओं को सिवाय एक जोटी कपड़े, भिक्षापात्र पानी छानने के

लिये कपड़ा, एक कर्धनी एक सुई सूत और बाल काटने के लिये उस्तरा के सिवाय और कोई वस्तु अपने पास नहीं रखनी चाहिये। वर्षा के दिनों में एक ही स्थान पर रहना चाहिये कि जिससे भ्रमण में जीवों की हिंसा न हो। आलस्य से नहीं लेटना चाहिये। बौद्ध भिक्षु को कभी वस्त्र हीन दशा में भी कहीं नहीं जाना चाहिये। एक ही बैठक में व एक ही पात्र से भोजन करना, तथा बैठे बैठे सोना, व वन मे अथवा खुले मे रहना, यह सब कार्य भिक्षु को पुण्य लाभ करने वाले हैं।

वर्षा के पीछे "प्रवारणा" का दिन होता है। सब भिक्षु एकत्रित होकर उनसे जो पाप हो गये हों उनको एक दूसरे से कह कर अपने मन को हलका करते हैं और प्रायश्चित ग्रहण करते हैं। इस दिन के अतिरिक्त उपवास के चारों दिन पर भी भिक्षुओं को अपने पापों को अन्य भिक्षुओं मे कह कर प्रायश्चित लेना चाहिये। इन चार दिनों में उपासक लोग भी अपने पापों को स्वीकार किया करते हैं। महाराजा अशोक ने तो एक शिला लेख द्वारा अपनी सारी प्रजा को यह स्पष्ट आज्ञा दी थी कि लोग नियत समयो पर अपने पापो का स्मरण करके उनके लिये पछताया करें।

भिक्षुणी सघः—भिक्षुओं से पृथक विहारो में भिक्षुणी सघो की व्यवस्था थी। भगवान बुद्ध की भिक्षुओं को यह कठोर आज्ञा थी कि स्त्रियों से वार्तालाप न करे और न उनसे भेट करें। यदि आवश्यक पड़े तो अन्य पुरुषों की उपस्थिति में कर सकते हैं। इसलिये भगवान बुद्ध ने पहले भिक्षुणी सघ नहीं बनाया। पीछे महात्मा आनन्द के आग्रह पर भिक्षुणी को भी दीक्षा देने लगे। परन्तु भिक्षुणियो को भिक्षुओं से

भी अधिक आठ धर्म पालन करने के लिये और बताये गये। जैसे कि यदि कोई भिक्षु सामने से निकले तो भिक्षुणी को खड़े हो जाना चाहिये। बैठे रहना या लेटे रहना अनुचित है। इसी प्रकार के सात और नियम हैं।

भिक्षु का दैनिक जीवनः—दिन निकलने से कुछ पहले घंटे के बजने के साथ सब भिक्षुक उठते हैं और शौच स्नान आदि नित्य क्रिया से निवृत होते हैं। वे स्नान आदि करने के समय भगवान बुद्ध की अपार दया का स्मरण करते हैं। भगवान बुद्ध की दया यह है कि उन्होंने अपना निर्वाण छोड़कर संसार के उद्धार के लिये जीवन के दुख सुख सहन किये और लोगों को सच्चे धर्म का उपदेश दिया। इसके पश्चात् भगवान बुद्ध की मूर्ति के सम्मुख सब भिक्षु एकत्रित होकर भगवान बुद्ध की स्तुति करते हैं। फिर प्रत्येक भिक्षु और श्रामनेर संघ के आचार्य के सामने जाकर प्रणाम करके दिन में धर्माचरण की प्रतिज्ञा करता है। प्रति दिन की इस प्रतिज्ञा से उसको अपने धर्म पालन के विचार को नित्य स्मरण करना पड़ता है जिससे वह दिन प्रति दिन पक्का होता जाता है। इसके पश्चात् विहार की सफाई आदि का कार्य करके कुछ भिक्षु पाठशाला का कार्य करते हैं और शेष ध्यान में बैठ जाते हैं।

इसके पीछे सब लोग भिक्षा मांगने को जाते हैं। बाहर जाने में उनकी निगाह सदैव नीचे को रहती है। चारों ओर घूमती नहीं है। वे किसी से कुछ मांगते नहीं हैं। जिसकी जो इच्छा से हो वह उनके पात्र में डालता है। दोपहर को भगवान बुद्ध की मूर्ति के सामने भक्तिपूर्वक

कुछ भोग रखकर सब लोग खाना खाते हैं। खाना खाने में यह विचार करते जाते हैं कि खाना शरीर की रक्षा के लिये खाया जाता है स्वाद के लिये नहीं। शरीर की रक्षा धर्माचरण और ध्यान करने के लिये की जाती है, शारीरिक सुख के लिये नहीं। फिर भगवान बुद्ध की मूर्ति के सन्मुख स्तुतियाँ गाई जाती हैं। तत्पश्चात् कोई विद्यार्थियो को पढ़ाते हैं और कोई धर्म पुस्तको का अध्ययन करते हैं। इसी समय बाहर से आने वाले लोगो से भेंट होती है। अन्त में सध्या को फिर भगवान बुद्ध की स्तुति करके कोई भिक्षु उपदेश देता है। उस समय उपासक लोग भी सम्मिलित होते हैं। रात्रि को ध्यान करने के पीछे सब शयन को चले जाते हैं।

परिशिष्ट

اسلام کے خاص اصول

مسلمانوں کو حسب ذیل ارکان پر یقین کامل رکھنا لازم ہے

۱—خدا کی وحدانیت - ۲—محمد ابن عبداللہ کو رسول خدا ماننا - ۳—دنیا کا کل کام خدا فرشتوں کے ذریعہ سے کرتا ہے - ۴—پیغمبر اسلام سے پہلے بھی متعدد انبیاء مبعوث ہوئے جنہوں نے کتب توریت و انجیل لوگوں کو دیں - مگر محمد صلعم خاتم النبیین و سرور انبیاء تھے - ۵—روز حشر کل روحیں قبروں سے نکلیں گی - اور خدا حسب اعمال ان کا انصاف کریگا - ۶—ہر فعل فاعل حقیقی (خدا) کی مرضی سے ہوتا ہے - اور ہر فعل کے ارتکاب کا علم خدا کو پہلے ہی سے رہتا ہے -

مسلمانوں کو حسب ذیل پانچ کام کرنا فرض ہیں .—

۱—کلمہ پڑھنا - کلمہ یہ ہے (لا إِلٰہ الا اللہ محمد الرسول اللہ) یعنی (بجز معبود حقیقی کے کوئی دوسری ہستی قابل پرستش نہیں ہے - اور محمد خدا کے رسول ہیں) - ۲—نماز روز میں پانچ مرتبہ

نماز ادا کرنا - ۳— ماہ صیام میں روزہ رکھنا - ۴— زکواۃ دینا - ۵—
حج یعنی خانۂ کعبہ کا طواف کرنا -

۱— خدا— دنیا کا مالک صرف خدا ہے - اسی کی ذات قابل پرستش ہے- اس کا وجود روز ازل سے ہے اور ابد تک رہے گا - اس کی ذات غیر فانی ہے - اور اسکا نہ کوئی قد ہے اور نہ شکل - نہ رنگ ہے اور نہ روپ- وہ ہمیشہ یکساں رہتا ہے - وہی دنیا کو پیدا کرنے والا ہے - وہ قادر مطلق - حاضر و ناظر ہے - وہ پیڑوں کی پتیاں اور ریگستان کے بالو کے دانوں کی تعداد سے بھی واقف ہے - انسان کے قلبی و صدری راز کا بھی اس کو انکشاف ہے - دنیا کا کوئی کام اس کی مرضی کے بغیر نہیں ہوتا - وہ سمیع و بصیر ہے - دنیا کا کوئی راز اس سے پوشیدہ نہیں ہے - وہ ہر جگہہ موجود ہے - وہ اپنے عزیز پیغمبروں سے باتیں بھی کرتا ہے - گو انسان خدا کی مصلحت سے نا واقف ہے - مگر ہر بات پر اسے "مرضی مولیٰ" خیال کر کے قناعت لازم ہے - خدا کا جلوہ مدبرالمہام ہے - اس کے کان نہیں لیکن وہ سب سنتا ہے - اس کے آنکھ نہیں لیکن وہ سب دیکھتا ہے - یہ باتیں وہ کیسے کرتا ہے - اس کا سمجھنا فہم انسانی سے بعید ہے لہذا اس کے سمجھنے کی کوشش کرنا بیکار ہے - بس یہ جان لینا کافی ہے کہ دنیا کا مالک (خدا) منصف بھی ہے اور رحیم بھی ہے - اور صرف وہی

قابل پرستش ھے - اھل تشیع کا خیال ھے کہ خدا کے اوصاف و شکل بھی عقل سے معلوم کرسکتے ھیں - دنیا میں انسانی زندگی کا معیار ترقي کرتا رھا - اور اس ترقی کے مطابق خدا انسانوں ني ھدایت کے قانون بناتا رھا ھے - جو مختلف مذاھب کی شکل میں نمودار ھوئے - شیعہ اصحاب کے خیال سے ھر شخص اپنے افعال کا واحد جواب دار ھے - اس کے اعمال کے مطابق اس کو سزا یا جزا ملتي ھے - لیکن خدا کا کوئی جسم نہیں اور نہ اسے کوئي دیکھہ سکتا ھے -

٢ — فرشتے — فرشتے نہ کھاتے ھیں اور نہ پیتے ھیں - یہ مرد و زن کے اختلاف سے مبرا ھیں - ان میں چار فرشتے خاص ھیں :

١ — جبرائیل — یہ خدا کا پیغام لے جانے کا کام کرتے ھیں - پیغمبروں کے پاس خدائی پیغام کے رسد کي خدمت انھیں کے سپرد رھي -

٢ — عزرائیل — یہ ملک الموت ھے - ان کا کام حکم خدا وندی کے ماتحت انسانوں کی روح قبض کرنا ھے اور اس کو روز قیامت تک محفوظ رکھنا ھے -

٣ — اسرافیل — ان کے پاس وہ صور ھے جسے وہ قیامت کے روز حکم خدا وندی سے پھونکیں گے - یہ صور ان کے منہ میں ھر وقت اسطرح سے لگا رھتا ھے کہ گو یا وہ اب

پھونکنے ہی والے ہیں - صرف خدا کے فرمان کے منتظر ہیں -

۴- میکائیل— ان کے سپرد دنیا کی رزق رسانی ہے - بارش کرانا و غلہ پیدا کرانا وغیرہ انہیں کے قبضۂ اقتدار میں ہیں -

جب خدا نے دنیا پیدا کی تو اس میں سکونت کے لئے حضرت آدم کی ہستی کو معرض وجود میں لائے - اس وقت حضرت آدم بالکل پاک و صاف تھے - خدا نے کل فرشتوں کو انہیں (آدم) سجدہ کرنے کا حکم دیا - کل فرشتے بجز عزازیل کے سر بسجود ہوئے - عزازیل معلم الملکوت تھا اس نے نافرمانی کی اور حضرت آدم کو سجدہ نہیں کیا - اس نا فرمانی کی سزا میں خدا نے اسے آسمان سے نکال دیا - اور اس کا نام ابلیس یعنی شیطان قائم کر دیا - اپنی اس ذلت کے انتقام میں وہ انسانوں کو گمراہ کر کے مائل بہ عصیان کرنے کی کوشش کرتا ہے - اور انسانوں کو فریب دیکر ان سے گناہ کراتا رہتا ہے - لیکن جو شخص صدق دل سے ایمان لاکر شر ابلیس سے محفوظ رہنے کی التجا کرتے ہیں انہیں خدا قیامت کے روز بخش دیگا -

ہر شخص کے ساتھ دو فرشتے بہ حیثیت کاتب اعمال ہر وقت داہنے و بائیں ہاتھ پر موجود رہتے ہیں - اور ہر فعل انسانی کو قلم بند کرتے ہیں - یہ اپنے مقررہ اوقات پر بدلتے ہوتے رہتے ہیں - نیز پس مردن قبر میں دو فرشتے منکر و نکیر آتے ہیں - اور مردہ سے سـ

کي وحدانیت اور محمد صلعم کي رسالت پر یقین رکھنے کے متعلق سوال کرتے ھیں -

٥—جن—فرشتوں کے علاوہ ایک اور فرقه جنوں کا ھے- یه دنیا کے ایک گوشه میں کوہ قاف پہاڑ میں رھتے ھیں - یہي ان کا مسکن ھے - ان کا خمیر آتسي ھے - ان میں بھي بعض مومن و بعض منکر ھیں - مرنے کے بعد انکا انجام بھی عام انسانوں کا سا ھوتا ھے -

۳—کتاب اور پیغمبر—مسلمانوں کا اعتقاد ھے که علاوہ قرآن کے دوسری کتابیں بھی جو دیگر انبیاء پر نازل ھوئیں وہ بھی خدائي کتابیں تھیں - مختلف انبیاء مثلاً داؤد - ابراھیم - عیسیٰ و موسیٰ وغیرہ مختلف اوقات پر مبعوث ھوئے - اور ان انبیاء نے بھي لوگوں کو تلقین کي - لہذا مسلمانوں کو ان انبیاء کا بھی ادب لازم ھے - اور ان کو پیغمبر ماننا واجب ھے - مگر رفتار زمانه کے ساتھه ان پیغمبروں کی کتابیں اصل نہیں رھیں - اس لئے قرآن شریف نازل کیا گیا - سب سے پہلے پیغمبر حضرت آدم تھے انھیں سے نسل انساني وجود میں آئي - حضرت آدم پیغمبر اول الزماں اور حضرت محمد صلعم پیغمبر آخر الزماں کے درمیان لاکھوں انبیاء مبعوث ھوئے - ان میں سے چند مخصوص انبیاء کے نام حسب ذیل ھیں :—

حضرت آدم - حضرت نوح - حضرت ابراھیم - حضرت موسیٰ -

حضرت عیسیٰ - حضرت محمد صلعم حضرت عیسیٰ کو روح اللہ (خدا کی روح) کہتے ہیں - اور حضرت محمد صلعم کو رسول اللہ کہتے ہیں - جملہ انبیاء میں رسول اللہ ہی افضل ترین ہیں - صرف محمد صلعم ہی کو یہ شرف حاصل ہوا تھا کہ آپ کو معراج نصیب ہوئی اور خدا سے ہم کلام ہوئے - اور دیدار الٰہی سے مشرف ہوئے -

۴---روز حشر---جب دنیا میں گناہ انتہا سے متجاوز ہو جاویں گے تو حکم خدا سے فرشتۂ اسرافیل صور پھونکیں گے - اس کی آواز سے تمام دنیا فنا ہو جائیگی - پھر دوبارہ صور پھونکا جاویگا اس کی آواز سے کل روحیں از سر نو بیدار ہو جاوینگی - خواہ ان کو مرے کتنا ہی طویل عرصہ کیوں نہ ہوا ہو - وہاں سب آدمیوں کو ان کے دعاوی نامۂ اعمال دئے جاوینگے جو فرشتوں نے ان کی زندگی میں لکھے تھے - پھر ان اعمال ناموں کی میزان ہوگی - جس کے اعمال صالح اعمال بد سے زیادہ ہوں گے وہ بہشت میں داخل کئے جاوینگے ورنہ آتش دوزخ کا ایندھن بنیں گے - فرد اعمال کی میزان کے بعد سب "پل صراط" جو کہ بال سے باریک اور تلوار سے تیز تر ہے عبور کرینگے - خدا کے نیک بندے اس پل کو آسانی سے عبور کرکے جنت الفردوس میں چلے جاوینگے -

مگر پر گناہ و عاصی اس پل پر سے کٹ کر نیچے بحر آتش دوزخ میں گر جائینگے - دوسرے مذھب کے پیرو بھي جو واحد وجود کے قائل ھیں اور اعمال صالح کئے ھیں وہ بھي بہشت میں جاوینگے - جو مسلمان آتش دوزخ میں ڈال دئے جاوینگے وہ بھی بعد میں وھاں سے پاک ھو کر رسول‌الله کی سفارش لیکر جنت میں منتقل کر دئے جاوینگے - مگر اکثر مسلمانوں کا یقین ھے کہ جن لوگوں نے گناہ کبیرہ کئے ھیں وہ دوزخ سے نہیں نکالے جاوینگے اور ان کی بخشش نہیں ھوگي -

۵ــــ گناہــــ گناہ دو طرح کے ھیں .ــــ گناہ کبیرہ اور گناہ صغیرہ -

گناہ کبیرہــــ مثلاً قتل - خدا اور والدین کي اطاعت نہ کرنا - زنا کاری - شراب نوشی - سود خواری - یتیماماء کي مالیت ھضم کرنا - نماز جمعہ نہ ادا کرنا - ماہ صیام کے روزے نہ رکھنا - ظلم کرنا - غیبت کرنا - جھوٹ بولنا - جھوٹی گواھي دینا - سچی گواھی نہ دینا - جھوٹی قسم کھانا - ظالموں کي تعریف کرنا - جھوٹ فیصلہ دینا - جادو کرنا - جوا کھیلنا - خود نمائي کرنا - کسي کي میت پر سینہ کوبي کرنا - ناچنا و گانا - یہ سب گناہ کبیرہ ھیں - ان کي معافي صرف اسي صورت میں ملتي ھے - جب انسان اپنے گناھوں کي صدق دل سے توبہ کرکے آئندہ کے لئے محتاط ھوتا ھے -

گناہ صغیرہ—مندرجہ بالا گناہوں کے علاوہ دوسرے گناہ "گناہ صغیرہ"
ہیں۔ ان سے آسانی سے نجات حاصل ہوجاتی ہے۔

۲—مسلمانوں کے لازمی فرائض

مسلمانوں میں پانچ طرح کے کام ضروری ہیں :—
۱—فرض۔ ۲—واجب۔ ۳—سنت یا فطرت۔ ۴—مستحب۔
۵—مباح یا جائز۔

مسلمانوں کو تین باتیں منع ہیں :—
۱—حرام۔ یعنی وہ فعل جس کی قطعی ممانعت ہے۔ اس کا
ارتکاب گو گناہ نہیں ہے مگر قابل نفرت ہے۔ ۲—مکروہ۔ یعنی برا
فعل۔ ۳—مفسد۔ یعنی جھگڑا پیدا کرنے والی باتیں۔

فرض—فرض پانچ ہیں۔ ۱—تشہد۔ ۲—نماز۔ ۳—روزہ۔
۴—زکواۃ۔ ۵—حج۔ ان کو ارکان دین یعنی مذہب
کے ستون کہتے ہیں۔ ان ارکان کی ادائگی فرض ہے۔

۱—تشہد—اسلام کے اولین و اہم ترین ورد کو کلمہ کہتے ہیں۔ اور
اس کلمہ خوانی کو تشہد کہتے ہیں۔ جب کوئی غیر
مسلم مشرف بہ اسلام ہوتا ہے تو اس پر بھی کلمہ خوانی
فرض ہوتی ہے۔ کلمہ عربی زبان میں ہے۔ اور پورا
قرآن بھی عربی زبان میں ہے۔ کلمہ میں اسلام کے دو
بڑے اصول ظاہر کئے ہیں۔ اول تو ذات باری تعالیٰ کی
وحدانیت اور دوسرے محمد صلعم کو رسول اللہ ماننا۔
دیگر تمام باتوں کا قیام انہیں دو سنگ بنیاد پر قائم ہے۔

۲—نماز—نماز پڑھنے سے پہلے طہارت یا پاکیزگی لازم ہے - بغیر طہارت نماز روا نہیں ہے - طہارت کے تین طریقے ہیں—

۱—وضو - ۲—غسل - ۳—تیمم -

۱—وضو—وضو میں چار باتیں ہوتی ہیں - ہاتھوں کو کہنی تک دھونا پیشانی سے ٹھڈی تک منہہ دھونا - بھیگے ہاتھوں سے سر پونچھہ لینا - پیروں کو ٹخنوں تک دھونا - شیعہ اصحاب پیروں کو بھی گیلے ہاتھوں سے پونچھہ لینے کو کافی خیال کرتے ہیں -

وضو کرنے سے پہلے وضوء کی نیت "خیال" کرنا لازم ہے - نیت یہ ہے کہ میں نماز ادا کرنے کے لئے وضو کرتا ہوں - وضو اللہ کا نام لیکر شروع کرنا چاہئے - ہاتھہ دھوتے میں ہاتھوں کو پانی میں نہیں ڈالنا چاہئے بلکہ پانی ہاتھہ پر ڈالنا چاہئے - اس طرح سے ہاتھہ تین مرتبہ دھونا چاہئے - کلی و غرارہ بھی تین بار کرنا چاہئے - ناک کے نتھنے و ڈاڑھی بھی صاف کرنا چاہئے - کانوں کو گیلی انگلیوں سے صاف کرنا چاہئے -

۲—غسل—اگر کسی وجہہ سے جسم ناپاک ہو گیا ہو تو نہانا چاہئے - غسل کرنے سے پہلے کپڑے بدل کر وضو کرے اور پھر نیت کرے کہ میں پاک ہونے کے لئے غسل کرتا ہوں - غسل کرنے سے پہلے تین تین بار داہنے و بائیں کندھوں اور سر پر اتنا پانی ڈالے کہ بدن کا ہر حصہ بھیگ جائے -

۳—تیمم—اگر کسی وجہ سے پانی میسر نہ آ سکے یا وہ شخص بیمار ہو اور پانی سے نقصان کا احتمال ہو - یا پانی لانے میں کسی دشمن یا جانور کا خطرہ ہو - یا نماز کا وقت قلیل رہ گیا ہو تو وہ شخص ایسی صورت میں وضو کے عوض تیمم کرسکتا ہے - تیمم میں پہلے نیت کرے اور پھر بالو یا پاک مٹی سے ہاتھ و منھ کو رگڑ کر صاف کرے - ہاتھوں کو کہنیوں تک ملنا چاہئے - اسی کو تیمم کہتے ہیں -

طہارت کے بعد نماز جائز ہو جاتی ہے - نماز مکان و مسجد ہر جا پڑھی جا سکتی ہے - مگر مسجد میں زیادہ مناسب ہے - بالخصوص نماز جمعہ تو مسجد میں ادا کرنا فرض ہے - ہر مسجد میں ایک مؤذن ہوتا ہے - نماز کے وقت یہ مؤذن بہ آواز بلند اذان دیگر مسلمانوں کو نماز کی دعوت دیتا ہے - اذان میں کلمہ تکبیر کے بعد وہ کلمۂ شہادت پڑھ کر خدا کی وحدانیت محمد صلعم کی رسالت کی شہادت دیتا ہے - اور نماز پڑھنے کی ترغیب دیتا ہے - فجر کے وقت الصلاۃ خیر من النوم یعنی نماز سونے سے زیادہ افضل ہے - کا اضافہ کرتا ہے -

جب سب نمازی وضو سے فارغ ہوکر نماز کو کھڑے ہوتے ہیں تو ایک مسلمان سب سے آگے کھڑا ہوتا ہے - یہی اُس وقت کا امام ہوتا ہے - سب مسلمان قبلہ رو کھڑے ہوتے ہیں -

ت—نماز شروع کرنے سے پہلے نمازي صدق دل سے نیت کرتا ہے کہ
اس وقت میں سچے دل سے دو یا جس قدر رکعت ادا
کرنا ہوں - ادا کروں گا -

یر—پھر ہاتھہ کے دونوں انگوٹھوں کو کانوں کي لو سے چھونا ہے اور
ھتیلی سامنے رکھکر الله اکبر کہتا ہے -

ام—اس کے بعد نمازی دونوں ہاتھہ ناف کے نیچے اس طرح
باندھتا ہے کہ داھنے ہاتھہ کي ھتیلي بائیں ہاتھہ کی
پیٹھہ پر رھتی ہے - نمازي چشم نگوں رہتا ہے - اسي حالت
میں ثنا (اے خدا تو پاک ہے - تیرا نام بڑا ہے - بجز
تیرے اور کوئي خدا نہیں ہے - تیري جتنی تعریف کي
جائے وہ کم ہے) خوانی کرتا ہے - اور تعوذ (شرا لبلیس سے
مجھے پناہ دے) اور تسمیہ (خدا رحمن الرحیم غفور و
کریم ہے)کہتا ہے - اس کے بعد فاتحہ پڑھا جاتا ہے - جس
میں قرآں کے اولیں اصولوں کي آئیتیں پڑ ھي جاتي
ھیں - اور اس کے بعد حسب منشاء چند اور آئیتیں
اضافہ کی جاتي ھیں اس کے بعد دونوں ہاتھہ گھٹنوں
پر رکھہ کر اور حمیدہ قامت ہوکر الله اکبر کہتے ھیں - پھر
کھڑے ہوکر تسمیہ کہتے ھیں -

یر سجدہ—اس کے بعد دونوں ہاتھہ و پاؤں نیچے ٹیک کر سجدہ
کرنا چاھئے - اس وقت ہاتھوں کے انگوٹھے کانوں کے سرے
چھوتے رہتے ھیں - پھر نمازی الله اکبر کہتا ہوا گھٹنوں کے

دل بیٹھہ جاتا ھے - ھاتھہ بھي گھٹنوں پر رکھہ لیتا ھے - اور پہلے ھي کے طرح دوسرا سجدہ کرتا ھے - اور اللہ اکبر کہتا ھوا کھڑا ھوجاتا ھے - اس طرح ایک رکعت پوري ھوجاتي ھے - دوسري رکعت پھر فاتحہ سے شروع ھوتی ھے - اس میں گذشتہ رکعت کی آئیتوں کے سوا دوسری آئیتیں پڑھی جاتي ھیں - اسی کے بعد التحیات کا ورد ھوتا ھے - "اے خدا تو ھي قابل ثنا ھے - رسول اللہ کو آرام دے ھمکو اور تیرے سچے بندوں کو آرام دے" - شیعہ لوگوں کي نماز یہاں ختم ھوجاتي ھے - لیکن اھل سنت اس کے بعد تشہد پڑھتے ھیں - درود شریف پڑھتے ھیں - جسمیں رسول اللہ اور ان کي امت کے لئے آرام و آسایش کي دعا ھوتي ھے - پھر خود کي فلاح و بہبودي کی دعا ھوتی ھے - آخیر میں داھنے و بائیں رخ کرکے سلام بھیجتے ھیں "خدا تم پر رحم و کرم کرے اور آرام دے -" سب کے بعد کھڑے ھوکر دونوں ھاتھہ پھیلا کر دعا مانگتے ھیں - اور ھاتھوں کو منہہ پر پھیر لیتے ھیں -

نماز کے پانچ وقت ھیں :—

(۱) قبل طلوع آفتاب اُسے فجر کہتے ھیں - (۲) بعد نصف النہار اسکا وقت ایک بجے سے تین بجے تک رھتا ھے - اسے نماز ظہر کہتے ھیں - (۳) نماز عصر تیسرے پہر کی نماز اس کا وقت شام کے چار

ىحے ھے - (۴) ىمار معرب حب دن چھپ رها هو اور رات كي تاريكي كي حهلک ىمودار هوںا شروع هوگئي هو - (٥) ىمار عشاء يه ايک پهر رات گئے عموماً ىو - دس ىحے پڑھي حاتی ھے - دوسری - تيسري و پاںچوں ىمار ميں چار رکعت چوتهی ميں تيں اور پهلی ميں دو رکعت ورص هيں -

ىمار حمعه—حمعه کے رور کل مسلماںوں کو حمع هو کر مسحد ميں طهر کی ىمار ادا کرںا لارم اوورص ھے - عرىت - علالت - ملارمت - ںاںيںكي - پاگل پں - لنگڑے هوے ىير ىچوں و عورتوں کو مسحد ميں حاںا ورص ىهيں - اس ىمار ميں چار کے ىحائے دو رکعت هي ورص هيں - ىمار کے علاوه امام حمعه ايک حطىه و محتصر وعط ىهی ديتا ھے - حطىه امام کے علاوه دوسرا شحص ىهی اس كي احارت سے پڑه سکتا ھے - رور حمعه ىهت هی سعيد ماںا گيا ھے -

ىمار عرىت—مسافرت کی حالت ميں اںساں ىحائے وصو کے تيمم کر سکتا ھے اور ىحائے چار رکعت کے صرف دو رکعت پڑه سکتا ھے - مسافر کو ىمار حمعه کے لئے مسحد مين حاںا ورص ىهيں ھے -

ىمار حوف—يه ىمار اس وقت پڑھي حاتي ھے حب حهاد ميں دشمںوں کا حوف هو - اس ميں قىله رو هوںا يا گھوڑے سے اترںا صروري ىهيں - ايسے موقعوں پر ووح کے دو حصے کردئے حاتے هيں تاکه حب ايک حصه ىمار ادا کرے

دوسرا دستہ دشمنوں کي سرکوبی کرتا رهے - یا لڑائي کے
لئے مستعد رهے -

نماز خسوف — سورج گہن کے وقت مسجد میں نماز ادا کرنا چاهئے - چاند گہن کے وقت گھر هي پر نماز ادا کرلینا چاهئے - اسی کو نماز خسوف کہتے هیں - جب تک گرهن ختم نہ هو جائے دست بہ دعا رهنا چاهئے -

روزہ رمضان — هر مسلمان کو رمضان کے مہینے میں روزے رکھنا فرض هے - طلوع آفتاب سے غروب آفتاب تک پانی بهی نہیں پینا چاهئے - اگر دانت صاف کرنا هوں تو بهي قبل طلوع آفتاب کرنا چاهئے - جس روز چاند نظر آجائے اسي روز سے ماہ رمضان شروع هوجاتا هے - اگر ایک مسلمان نے بهی چاند دیکھا هے تو بهی ماہ رمضان شروع هوجاتا هے - بچوں کو روزہ رکھنا فرض نہیں - جو لوگ سفر میں هوں یا بیمار هوں یا جن عورتوں کے شیر خوار بچے هوں اور ایسي صورت میں روزے رکھنے سے عاجز هوں تو وہ لوگ بعد میں قضا رکھ سکتے هیں - اگر کوئی شخص دیدہ و دانستہ روزہ توڑ دے تو وہ شخص یا تو ساٹھ آدمیوں کو دونوں وقت کھانا کھلائے یا ایک هی آدمي کو ساٹھ روز تک کھانا کھلائے - اگر کوئی شخص ضعیفي کی وجہ سے روزہ نہ رکھ سکے تو اسے صدقہ دینا چاهئے - یعني کسی مسکین کو ماہ رمضان میں روز کھانا دیوے - عزوے

آفتاب پر روزہ کھولا جاتا ھے - اس وقت اول قدرے پانی پیتے ھیں یا حرمہ کھاتے ھیں اس کے بعد کھانا کھاتے ھیں اس کھانے کو افطاری کہتے ھیں - اس کے علاوہ قبل طلوع آفتاب بھي کھانا کھاتے ھیں - کہ دن میں بھوک کا غلبہ نہ ھو اس کھانے کو ''سحری'' کہتے ھیں - ماہ رمضان میں یہودي بھي روزہ رکھتے ھیں - لیکن ان لوگوں میں سحری کھانے کا رواج نہیں ھے -

رمضان کا مہینہ بہت مقدس خیال کیا جاتا ھے - اس مہینہ میں حضرت محمد صلعم پر قرآن نازل ھوا تھا - کہا جاتا ھے کہ ماہ صیام میں بہشت کا دروازہ کھلا رھتا ھے اور شیطان قید کردیا جاتا ھے -

اعتکاف — ماہ رمضان کے آخري دس روز میں سے ایک روز اعتکاف کرنا یعني گوشہ نشیں ھونا لازمي ھے - معتکف کسي سے دن کے وقت باتیں نہیں کر سکتا - ایک مقررہ مقام پر بیٹھہ کر یاد الہی میں محو رھتا ھے - اس وقت قرآن شریف کا ورد بہتر ھے - رات کو وہ شخص کھانا کھاتا ھے - سونا ھے - نیز کارکنوں کو کام کي ھدایت بھي دے سکتا ھے - مگر مسجد کے باھر بجز حوائج ضروری سے فارغ ھونے یا وضو کرنے کے نہیں آسکتا ھے -

نماز تراویح — ماہ رمضان میں نماز عشاء کے بعد بیس رکعت نماز مزید پڑھنا چاھئے - ان کو نماز تراویح کہتے ھیں - یہ نماز فرض نہیں ھے - مگر اس کا پڑھنا اچھا ھے - بزرگ

اصحاب هر روز قرآن شریف کا ایک سارہ پڑھتے ھیں اور مہینہ بھر میں پورا قرآن شریف حتم کردیتے ھیں -

عیدالفطر—ماہ رمضان کے خاتمہ پر "عیدالفطر" کے روز جملہ مسلمان روزہ کھولتے ھیں - اس روز پہلے عربا کو صدقہ یا خیرات دیتے ھیں - سب لوگ کھانا کھانے کے بعد جمعہ کی طرح مسجد میں جمع ھوکر نماز پڑھتے ھیں - پھر تمام روز دوست احباب سے ملنے اور خوشی منانے میں بسر کرتے ھیں - اسے عیدالفطر اس لئے کہتے ھیں کیونکہ ماہ رمضان کے روزوں کے بعد اس روز پہلے پہل دن کو کھانا کھایا جاتا ھے -

زکواۃ—ھر آزاد شخص یعنی وہ شخص جو کسی دوسرے کا غلام نہ ھو- کو سال بھر میں اپنی آمدنی کا چالیسواں حصہ زکواۃ میں دینا فرض ھے - مگر زکواۃ دینے والے کی آمدنی کم از کم تقریباً ٥٥ تولہ چاندی یا ساڑھے سات ماشہ سونا ھونا چاھئے - اس سے کم حیثیت والے کا شمار غریب میں ھوگا - اور اس پر زکواۃ دینا فرض نہیں ھوگا - زکواۃ کا حساب کرنے کے وقت مکان کے کل غلہ - اسباب - کپڑے - گھوڑے - نوکر وغیرہ کو منہا کرکے رقم زکواۃ کا حساب کرنا چاھئے - جواھرات پر زکواۃ نہیں عائد ھوتی - بھیڑوں و جانوروں میں ١٢٠ کی تعداد پر ایک اور ٢٠٠ پر دو اور پھر ھر سیکڑے پر ایک بھیڑ دینا لازم ھے - گھوڑوں اور اونٹوں

کے دام پر ڈھائي روپیہ سیکڑہ زکواۃ لگتی ہے - تیس گایوں سے کم پر یا پانچ اونٹوں سے کم غلہ یا بیل پر زکواۃ نہیں لگتي -

زکواۃ غریبوں - مسافروں - مقروضوں - غلاموں کو رہا کرانے کے لئے دینا چاھئے - زکواۃ مسجد بنانے - دفنانے - اپنے والدین- بچوں- متمول شخص - یا اس کے لڑکے و نوکر کو نہیں دینا چاھئے -

۵ - حج — ہر صاحب حیثیت پر عمر بھر میں ایک مرتبہ طواف خانۂ کعبہ فرض ہے - حج ماہ ذي الحجہ میں ہوتا ہے- جب حاجی مکہ کے قریب پہونچتے ہیں تو کپڑے اتارکر احرام میں ملبوس ہوکر دو رکعت نماز پڑھتے ہیں - احرام دو چادریں ہوتي ہیں - ایک جسم سے لپیٹ لیتے ہیں - اور دوسری اوڑھ لیتے ہیں - احرام پہن کر حاجي حج کی نیت کرتا ہے - وہ شکار کرنا چھوڑ دیتا ہے - کسي جانور کو نہیں مارتا - سر و داڑھي کے بال نہیں منڈواتا - اور کوئي تجارتي کام نہیں کرتا - سر و منھہ کھلا رکھتا ہے - وہ راستہ میں لبیک کہتا ہوا مکہ پہونچتا ہے - جو لوگ ملتے ہیں اسے یہي لبیک کہکر سلام کرتا ہے - دعائیں پڑھتا ہوا حجرالاسود (سیاہ پتھر) کے پاس جاتا ہے اور اسے بوسہ دیتا ہے - اگر بھیڑ ہو تو ھاتھہ یا لکڑی اس سے مس کرکے اسی کو بوسہ دیتا ہے - اور دل مین کہتا ہے - "اے خدا میں تیرے رسول کي نقل کرتا ہوں -

تو رسول کو اس میں رکھہ -" پھر حاجی کعبہ کے سات چکر کرتا ھے - اسي کو طواف کہتے ھیں - طواف کے بعد کعبہ کی دیوار سے سینہ و منہہ لگا کر ملتا ھے - پھر جہاں حضرت ابراھیم نماز پڑھتے تھے وھاں کھڑے ھوکر دو رکعت نماز ادا کرتا ھے - زمزم کے متبرک پاني کو پیتا ھے - اور حجرالاسود کو دو بارہ بوسہ دیتا ھے - اس کے بعد "صفا و مروا" پہاڑوں کے درمیان سات مرتبہ دوڑ لگاتا ھے -

حج کے آٹھویں روز "مینا" کي وادی میں جا کر نماز پڑھتا ھے - نویں روز کوہ عرفات کی زیارت کرتا ھے - وھاں سے مزدلفہ میں ٹھہر کر منا جا کر سات کنکر تین ستونوں پر جو وھاں موجود ھیں پھینکتا ھے - کہا جاتا ھے کہ اس مقام پر شیطاں نے حضرت اسمعیل کو بہکایا تھا - یہ کنکر تکبیر پڑھکر اسکو مارتے ھیں - اس کے بعد عیدالضحیٰ کي قربانی کر کے اور بال و ناخوں کٹواکر منا میں تین روز قیام کرکے واپسي کے لئے سامان خورد نوش مہیا کرتا ھے - اور روز سات کنکر ان ستونوں پر مارتا ھے - بعد ازیں کعبہ میں جاکر وقت رخصت پھر طواف کرتا ھے - آب زمزم پیتا ھے - اور کعبہ شریف کي دھلیز پر جبین سائی کرکے رخصت ھوتا ھے -

حجرالاسود کی بوسہ دھي - عیدالضحیٰ کي قرباني - احرام پہننا - صفا و مروا کے پہاڑوں پر جانا - منا میں سنگ باری کرنا -

اور کعبہ شریف کا طواف وغیرہ - یہ تمام رسومات کعبہ شریف میں حضرت محمد صلعم کے پہلے سے مروج تھیں - محمد صلعم نے ان تمام رسومات کو قائم رکھا مگر کعبہ شریف کے ۳۶۰ بتوں کو وھاں سے ھٹا دیا -

واجب—پانچ فرائض کے ماسوا سات واجب یعنی لازم کام ھیں -
۱—عمرا - یہ مکہ شریف کے حج کے بعد دوبارہ حج کرنا ھے - ایک مرتبہ حج کرنا تو فرض ھے - لیکن اگر ھو سکے تو دوبارہ پھر طواف کر لینا چاھئے - اس حج کے لئے کوئي مقرر وقت نہیں ھے - زیادہ تر حاجي حج کے بعد دو چار روز بعد ھي دوبارہ رسومات عمرا ادا کر دیتے ھیں - ۲—والدین کي اطاعت - ۳—عورت کو اپنے شوھر کے احکامات کي فرماں برداري کرنا - ۴—خیرات یا صدقہ دینا - ۵—عیدالضحیٰ کے وقت قرباني کرنا - ۶—نماز وتر عشاء کي نماز کے وقت جو معمولي رکعت کے علاوہ تین - پانچ یا سات رکعت اور پڑھی جائیں - تو وہ نماز وتر کہلاتی ھیں - ۷—اپنے رشتہ داروں کی مدد کرنا—صدقہ دینا اور عزیز داروں کي مدد کرنا صرف ان لوگوں کے لئے واجب ھے جو متمول و صاحب حیثیت ھیں - غرباء کے لئے صدقہ وغیرہ نیک کام ھے مگر ضروری نہیں ھے -

سنت یعني طریقت—یہ کام یا تو حضرت محمد صلعم کے کاموں کی نقل میں کئے جاتے ھیں - یا شروع زمانہ ھی سے مروج ھیں - جنہیں رسول اللہ نے بھی قائم رکھا - یہ کام چار

ہیں :—۱—ختنہ۔ ۲—سر و جسم کے بال کٹوانا۔ ۳—ناخن کٹوانا۔ ۴—نماز میں فرض کے پہلے کچھ رکعت پڑھنا۔

علاوہ ازیں وہ کام جو حضرت رسول کریم کبھی کبھی کرتے تھے۔

مستحب—"مستحب" کہلاتے ہیں۔ ان کا کرنا ضروری نہیں ہے۔ لیکن نیک خیال کیا جاتا ہے۔

مباح—مباح وہ کام ہیں جنکے نہ کرنے میں کوئی برائی نہیں ہوتی۔ پانچ نمازوں کے علاوہ تین وقت اور ہیں۔ یہ نماز "نفل" کہلاتی ہیں۔ ان کا پڑھنا ضروری نہیں ہے۔ لیکن مستحب ہے۔ ان کے اوقات حسب ذیل ہیں۔

۱—بعد طلوع آفتاب سات بجے کے قریب اسے نماز اشراق کہتے ہیں۔

۲—گیارہ بجے کے قریب۔ اسے نماز ضحیٰ کہتے ہیں۔

۳—نصف الیل کے بعد۔ اسکو نماز تہجد کہتے ہیں۔

تمام شد